बालकों का भावनात्मक निर्माण

(बाल मनोविज्ञान)

- पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

बालकों का भावनात्मक निर्माण

(बाल मनोविज्ञान)

लेखक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् **२०१३** मूल्य : ३३.०० रुपये

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

लेखक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

मुद्रक :
युग निर्माण योजना प्रेस,
गायत्री तपोभूमि, मथुरा

दो शब्द

बालक समाज तथा राष्ट्र की एक अमूल्य धरोहर होते हैं। इन्हीं मिट्टी के कच्चे लोंदों से राणाप्रताप, शिवाजी तथा महात्मा गांधी जैसे महापुरुषों का निर्माण किया जा सकता है। यह पावन धरोहर यदि सही ढंग से सँभाली, सुरक्षित रखी तथा विकसित की जाए तो मानवता का भविष्य प्रकाशमय बनाया जा सकता है।

हमारे सामने आज कितनी समस्याएँ मुँह बाये खड़ी हैं। राष्ट्रीय, सामाजिक तथा नैतिक पुनरुत्थान का बहुत बड़ा दायित्व आज हमारे कंधों पर आ पड़ा है। इसी दायित्व को कल हम आने वाली पीढ़ी के कंधों पर रखेंगे। यदि उनके कंधे कमजोर हुए तो वे लड़खड़ा जाएँगे। उन्हें आज से ही ऐसे सुदृढ़ बनाने में जुटना पड़ेगा, तभी कल वे इस भार को वहन कर सकेंगे।

ईश्वर की पवित्र धरोहर—बालक कभी-कभी माता-पिता के लिए एक समस्या बन जाते हैं। इसका दोष बालकों को दिया जाना गलत होगा। बालक जो कुछ भी सीखता है, समाज से ही सीखता है। अपने आस-पास जो कुछ वह व्यवहार होते देखता है उसी का अनुकरण करता है। सबसे पहले वह माता-पिता का ही अनुकरण करता है। बालक माता-पिता तथा समाज का प्रतिबिंब अपने क्रिया-कलापों में प्रस्तुत करता है।

नई पीढ़ी के निर्माण की कला से अनभिज्ञ—अपने उत्तरदायित्व से अनजान रहकर संतान का पालन-पोषण तो किया जा सकता है, पर निर्माण नहीं। इस पुस्तक में माता-पिता तथा समाज के उस दायित्व का मान तथा बाल मनोविज्ञान की ऐसी जानकारियाँ जुटाई गई हैं। जिसे पढ़कर पाठक नए सिरे से सोचने को विवश होता है तथा भावी पीढ़ी के निर्माण करने में एक कलाकार जैसा कौशल दिखाने का उत्साह मन में जाग्रत् होता है।

—प्रकाशक

विषय-सूची

बालकों का भावनात्मक निर्माण

(बाल मनोविज्ञान)

बच्चों के प्रति हमारा कर्तव्य और जिम्मेदारी

बच्चों की देखभाल, पालन-पोषण करने में विकसित व्यक्ति को ही अपना चातुर्य और अपनी योग्यता पर्याप्त मात्रा में लगानी पड़ती है। इसलिए छोटे बच्चों की देखभाल अल्पविकसित एवं विकासशील बड़ी आयु के बच्चे को सौंप देना बिलकुल ही अस्वाभाविक होगा। हर बच्चे को प्रारंभिक सहानुभूतिपूर्ण समझदारी की बड़ी जरूरत होती है और यह उसे किसी अनुभवी व्यक्ति से ही मिल सकती है। मेरे विचार से किसी बच्चे पर घर को अकेला छोड़ देना या उस पर पूरा खाना बनाने का काम छोड़ देना या सारे घर की सफाई का काम उस पर डाल देना आदि कुछ ऐसी जिम्मेदारियाँ हैं, जो उगते हुए बच्चे के लिए बहुत भारी होती हैं और उन पर नहीं डाली जानी चाहिए।

जब बच्चे कुछ बड़े हो चलें, तो उनसे यह आशा की जा सकती है कि वे अपने कपड़े और खिलौने साफ रखें, अपना हाथ-मुँह अपने आप धोकर सफाई से कपड़े पहन लें। लेकिन ऐसा करने के लिए उन्हें आरंभ से तैयार करते रहना चाहिए कि वे अपना काम आप कर लें और जहाँ तक हो सके बड़ों की सहायता के आसरे में न रहें। बच्चे कुत्ते, बिल्ली आदि जानवर भी बड़े चाव से पालते हैं, तो यह

भी करना चाहिए कि वे अपने जानवर की देखभाल खुद करें। ऐसा कर सकना हर छोटे बच्चे के लिए बड़ा कठिन होता है और उसे उस क्षेत्र में स्वतंत्र बना देने के लिए यह आवश्यक है कि उसे आरंभ में काफी मदद दी जाए। इस संबंध में सफाई करना और खाना खिलाना—ये दो ही ऐसी बातें हैं जो नियमित रूप से होनी चाहिए। बच्चा जब शुरू में कोई जानवर पालता है, तो उसका पालन-पोषण उत्साहपूर्वक करता है लेकिन ज्यों-ज्यों समय बीतता है, उसका उत्साह ठंडा पड़ता जाता है और उसे उस काम में ऊब हो जाती है।

बच्चों को क्रमश: रुपये-पैसे का मूल्य और उपयोग करना भी सिखाना चाहिए। वह दुनिया में कमाने वाले व्यक्ति की हैसियत से पैदा होता है, इसलिए यह बड़ा जरूरी है कि उसे इस काम का अनुभव हो। ऐसा अनुभव न होने की दशा में उसे बड़ी कठिनाई होगी। बच्चे से पैसा खर्च करवाने की आदत शुरू से डालनी चाहिए और ध्यान रखना चाहिए कि वह हर मुद्रा का उचित मूल्य समझने लगे। उससे पैसा बचाने का अभ्यास भी कराना चाहिए। आजकल के बच्चों के लिए पैसा बचाने की कई सरकारी योजनाएँ—अल्प बचत योजना आदि चली हैं, यह सब बालकों के लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई हैं। इनमें बच्चों की रुचि प्रारंभ से पैदा करने से यह लाभ होता है कि बच्चे फजूलखर्ची की आदत से बचकर पैसा बचाने की आदत डालते हैं। बचपन में पड़ी यह आदत आगे के जीवन में बड़ी सहायक सिद्ध होती है। मैंने एक बच्चे को देखा जिसके माता-पिता ने बचपन से उसे पैसा दिए जाने वाले जेब खर्च में से कुछ बचाकर पोस्ट ऑफिस में जमा करने की टेव डाल दी थी। तेरह-चौदह वर्ष की आयु तक वह बच्चा इतना धन इकट्ठा करने में समर्थ हो गया कि उसने अपनी जमा पूँजी से ही ४००) की लागत का एक रेडियो खरीदा। लेकिन सबसे बड़ी बात जो उसमें मुझे देखने को मिली, वह थी कि वह बड़ा मितव्ययी बन गया। यदि माता-पिता को कहीं

फजूलखर्ची करते देखता है, तो उसे उन पर क्रोध आने लगता है। इसलिए स्वावलंबन की भावना पैदा करने में यह अभ्यास बड़ा उपयोगी है। पैसे द्वारा बच्चे से उसके मन की चीज भी खरीदवानी चाहिए। परंतु बच्चे से यह आशा नहीं करनी चाहिए कि वे अपनी आवश्यकता की मूल्यवान् चीजें भी इसी प्रकार खरीद लेंगे।

बच्चों को यह शिक्षा तो प्रारंभ से ही मिलनी चाहिए कि वह अपने समय का सदुपयोग किस प्रकार करें और कौन-कौन-से कार्य करें। आजकल बच्चों को न केवल अपनी छुट्टी के समय बल्कि स्कूल में पूरे दिन इस बात की स्वतंत्रता दी जाने लगी है कि वे अपना काम चुन लें। यह अवसर मांटेसरी आदि पद्धतियों के जरिए कराया जाता है। ऐसा करना बच्चे के लिए उपयोगी होता है, क्योंकि बच्चे में खेल जैसा उत्साह ही हर काम के लिए रहता है और वह शिक्षा के मामले में भी अपना उत्तरदायित्व समझने लगता है। कला, संगीत, काव्य, हस्त-उद्योग आदि के प्रति लोगों का सम्मान बढ़ता ही जा रहा है। इसलिए बच्चों के लिए इनमें से अपनी रुचि के किसी भी विषय में योग्यता प्राप्त करने का द्वार खुला रहता है और अन्य तरह की सुविधाएँ भी बढ़ती जाती हैं।

हम बड़े बच्चों से यह आशा नहीं करते कि वे बहुत क्रोधी हों, आपस में बुरी तरह लड़ें, एक-दूसरे से जलें, कुढ़ें और मार-पीट करें या एक-दूसरे को तंग करें। हम आशा करते हैं कि वे शांत स्वभाव के सम्मिलित मनोवृत्तियों वाले व्यवस्थित चित्त के युवक हों। हमें उनसे कभी निराशा न होगी, यदि हमने शुरू से ही बच्चों को अपना आचरण स्वयं निर्धारित करने का अवसर दिया हो। घर या स्कूल में सबके लाभ के लिए आवश्यक नियम उन्हीं से बनवाएँ और उनको बड़ों के प्रतिबंधों से क्रमशः छुड़ाकर स्वतंत्र और निर्भर होने की शिक्षा दें। संभव है कि अपने उच्च और महत्त्वाकांक्षापूर्ण प्रयत्नों में हमेशा सफल न हों, कभी उनसे भूलें भी हों, उनमें दोष भी आ जाएँ,

वे छोटे-मोटे कामों में यहाँ-वहाँ अनुत्तीर्ण भी हो जाएँ, लेकिन इतना निश्चित है कि पारस्परिक बंधुत्व और स्नेहशीलता के द्वारा किशोरावस्था में भी कठिनाइयों के समय रास्ता निकालना सीख लेंगे।

माता-पिता के गृह-कार्यों में बच्चों को भी सम्मिलित होना चाहिए। किंतु उन पर इस प्रकार के दबाव नहीं डालने चाहिए, अपितु नम्रता और शिष्टतापूर्वक उनसे इस कार्य के लिए कहना चाहिए। ऐसा देखा जाता है कि जब हम किसी टूटी कुर्सी की मरम्मत करने लगते हैं, तो बच्चे भी स्वेच्छा से उनमें हाथ बँटाना पसंद करते हैं। जहाँ तक बालिकाओं का प्रश्न है, वे भी माता-पिता के साथ खाना बनाने में अधिक संतुष्ट होती हैं बशर्ते कि माँ उनसे फुसलाकर काम ले और उन्हें नई वस्तुओं के तैयार करने का ढंग बतलाती रहे। हमें बालक-बालिकाओं से व्यवहार करते समय समरसता का अधिक ध्यान रखना चाहिए। यदि हमारा ध्यान बालक की ओर अपेक्षाकृत अधिक है, तो बालिकाएँ अपने को उपेक्षणीय मानने लगती हैं। हमें इस बात का सतत प्रयास करना चाहिए कि बालिकाओं को इस भावना का अनुभव भी न हो सके। परिवार में यदि बालक-बालिकाएँ दोनों हैं तो गृह-कार्य का समान अंश दोनों को देना चाहिए।

हमारे देश में अधिकांश घरों में बच्चों के पालन-पोषण का स्तर बहुत निम्नकोटि का है। उसके लिए माता-पिता की आर्थिक कठिनाइयाँ इतनी दोषी नहीं हैं, जितनी कि बच्चों के प्रति माता-पिता की उपेक्षा, उनके प्रति अपने कर्तव्यों की अज्ञानता तथा बाल विज्ञान से अनभिज्ञता। बच्चे का जन्म उनके लिए एक आकस्मिक घटना है, मानो इसमें उनका कुछ हाथ ही नहीं है। वह उनके लिए एक पवित्र धरोहर न होकर ईश्वर की ओर से भेजा हुआ एक खिलौना मात्र है, जिससे वे अपने ढंग से खेल सकते हैं। ऐसे माता-पिता द्वारा पाले गए बच्चे की वही दुर्दशा होती है जैसी कि एक कार की किसी

अनाड़ी ड्राइवर के हाथ में पड़कर। वह स्वयं को दोष न देकर कार के पुर्जों को अपने ढंग से कसता और ढीला करता है। जब कार थोड़ी दूर चलकर फिर रुक जाती है, तो वह उसे एक मुसीबत समझकर किसी प्रकार ढकेलता हुआ ले जाने को लाचार होता है।

अधिकांश स्त्रियाँ शारीरिक और मानसिक रूप से इस गौरवशाली भार को सँभालने में असमर्थ और अयोग्य होती हैं कि वे माँ बन जाती हैं। ऐसी स्थिति में उनके लिए शिशुपालन का कार्य एक आनंद का हेतु न होकर गले पड़ा ढोल बन जाता है। फलस्वरूप बच्चे की शारीरिक और मानसिक शक्तियों का विकास सुचारु रूप से नहीं हो पाता। पौधा पनपने से पहले ही अपने थाले में ही मुरझा जाता है या फिर उसकी शक्तियाँ बहुमुखी होकर विकसित नहीं हो पातीं। उदाहरणार्थ यहाँ के अशिक्षित धनी वर्ग के बच्चे अथवा सोसाइटी में तितली कहलाने वालियों के "डार्लिंग बेबी" को देखिए। एक ओर जहाँ ऐसे सेठ महाजनों के बच्चे केवल सहज बुद्धि और परंपरागत रीति-रिवाजों के अनुसार ही पाले जाते हैं तथा माताओं के आलस्य और मोहवश वे हर तरह से एक समस्या बने हुए हैं, वहाँ दूसरी ओर इसके विपरीत तितली माताओं के बच्चे आया और नौकरों की बेपरवाही या आवश्यक रोक-टोक के कारण स्वाभाविक सुविधाओं से वंचित, जन्म ही से डॉक्टरों के मरीज बने हुए हैं।

बच्चों के विकास के लिए ये दोनों ही प्रकार की परिस्थितियाँ हानिकारक और अप्राकृतिक हैं।

पशुओं और पक्षियों के बच्चों का पालन-पोषण मनुष्य के बच्चों से कहीं अधिक प्राकृतिक ढंग से होता है। यही कारण है कि उनके बच्चों में अपनी जाति के स्वाभाविक गुण और संस्कार स्वस्थ रूप से चले आ रहे हैं। परंतु मनुष्य का बच्चा अपने माता-पिता के आडंबर, आलस्य, स्वार्थ तथा अज्ञान का शिकार बन जाता है। बहुत कम माता-पिता बच्चे की शक्ति, रुचि और योग्यता का अध्ययन

करके उसके अनुरूप प्रेरणा देने और वातावरण पैदा करने की चेष्टा करते हैं। अधिकांश व्यक्ति अपने बच्चों को अपनी सुविधा, रुचि तथा जरूरत के अनुसार ढालने का प्रयत्न करते हैं। यही कारण है कि उनके बच्चे प्रतिक्रियावादी बन जाते हैं।

माता-पिता को यह बात नहीं भूल जानी चाहिए कि जिस प्रकार क्यारी का प्रत्येक पौधा विकास संबंधी अपनी विशेषता रखता है, उसी प्रकार बच्चा अपनी शारीरिक और मानसिक शक्ति में एक-दूसरे से भिन्न हो सकता है। यही कारण है कि कोई विशेष वस्तु या तरीका किसी बच्चे को माफिक बैठ जाता है और किसी को नहीं। कोई बच्चा जल्द दाँत निकाल लेता है, छह महीने की आयु में बैठने लगता है, सालभर की आयु में चलने लगता है और जल्द ही बोलना भी सीख जाता है, जबकि कई बच्चे इन कामों को जरा देर से करते हैं। पर केवल इन्हीं बातों पर किसी बच्चे को स्वस्थ या अस्वस्थ नहीं मान लेना चाहिए तथा सफाई संबंधी कुछ नियम और बच्चे की आवश्यक जरूरतों का ध्यान तो हर सूरत में रखना ही चाहिए।

प्रेम, प्रोत्साहन, सम्मान तथा सुरक्षा की गारंटी—इन बातों की आवश्यकता बड़ों से भी अधिक बच्चों को है। एक अनचाहा और उपेक्षित बच्चा सहज ही एक रोगी और समस्यापूर्ण बच्चा बन जाता है। प्रतिकूल वातावरण के कारण कई होनहार बच्चों की शक्तियाँ कुंठित या गुमराह हो जाती हैं जबकि कई दुर्बल और अस्वाभाविक बच्चे भी अनुकूल वातावरण में पनप जाते हैं। यह अनुकूल वातावरण पैदा करना ही माता-पिता का काम है। बच्चों को हर समय नकारात्मक नियमों से जकड़कर बंद करना उचित नहीं है। बड़ों के उदाहरण ही ऐसे होने चाहिए कि उन्हें यथा समय ठीक ढंग से काम करने की प्रेरणा मिलती रहे। बच्चे का घर में रहना बड़ों के लिए एक चेतावनी है। मानो वह पुकारकर कहता है कि "देखो सँभलकर रहना,

तुम्हारी हरकतों का मैं आइना हूँ, जैसा तुम करोगे, मुझे भी वैसा ही करता पाओगे।"

बच्चे के विकास में पिता भी बहुत बड़ा पार्ट अदा करता है। पिता के द्वारा दी गई प्रेरणा, सुझाव और सहयोग बच्चे के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। माताओं की भूल के कारण अधिकांश पिता बच्चे के लिए एक डाँटने और सजा देने वाले दरोगा मात्र बनकर रह जाते हैं, ऐसी भूल करके माताएँ अपना महत्त्व भी कम करती हैं।

बहुत कम घरों में सहयोग से काम होता है। अगर-माता-पिता दोनों में से एक शासक है और दूसरा शासित अथवा दोनों में प्राय: मतभेद रहता है, तो इसका बच्चे पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। दो अमली राज्य में भला कौन प्रजा सुखी हुई है ? बच्चे की समझ में नहीं आता कि किसकी बात ठीक समझूँ और किस की गलत ? फलस्वरूप वह मनमाने ढंग से व्यवहार करने लगता है।

इसलिए विवाह करने से पहले प्रत्येक युवक और युवती के लिए यह आवश्यक है कि माता-पिता के कर्तव्यों को समझें। बच्चों का पालन-पोषण, बच्चों की समस्याएँ तथा बच्चों का शिक्षण—इन तीन मुख्य विषयों की उन्हें अच्छी जानकारी होनी चाहिए, ताकि आगे जाकर जब उनके अपने बच्चे हों, तब वे संतोषजनक ढंग से उनका पालन-पोषण कर अपने गृहस्थ जीवन को सुखद और सफल बना सकें। अब युग का यह तकाजा है कि कोई भी स्त्री अनचाहे बच्चे की माँ बनने की गलती न करे। माँ-बाप बच्चे के न केवल शरीर के ही अपितु उसके चरित्र के भी निर्माता हैं। इस दृष्टि से मातृ विज्ञान की शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक होनी चाहिए।

बच्चों के संग तो प्रत्येक व्यक्ति का संपर्क प्राय: रहता ही है। घरों में, स्कूलों में, मुहल्लों-टोलों, सभी जगह बच्चों से वास्ता पड़ता है। बच्चों के संपर्क में आने वाले व्यक्ति ही उनको अपने उदाहरण और बातचीत तथा व्यवहार से प्रभावित करते हैं। जिन व्यक्तियों का

बच्चों पर प्रभाव पड़ता है, अगर वे बाल मनोविज्ञान से अपरचित हैं, तो संभव है कि वे बच्चों को अपनी हरकतों से गुमराह कर दें, फिर चाहे यह प्रभाव परोक्ष रूप से पड़ता हो, चाहे प्रत्यक्ष रूप से। पालकों और अध्यापकों के असहयोग से बच्चे की कितनी हानि होती है, इसे जब तक पालक और अध्यापक नहीं समझेंगे, बच्चों की शिक्षा सुचारु रूप से नहीं हो सकती। बच्चे को केवल स्कूल भेज देने से ही पालकों का कर्तव्य समाप्त नहीं हो जाता। बच्चे का रुझान, उसकी अड़चनें तथा असुविधाओं को समझने की योग्यता प्रत्येक माँ-बाप में होनी चाहिए अन्यथा वे अध्यापक को सहयोग नहीं दे सकते।

अधिकांश घरों में बच्चे की अनसुलझाई हुई समस्याएँ पारिवारिक सुख-शांति को नष्ट करती हैं। माँ-बाप में परस्पर गलतफहमी पैदा हो जाती है। वे एक-दूसरे को दोष देकर खुद बरी होना चाहते हैं। बच्चे शारीरिक और मानसिक रूप से प्राय: स्वस्थ ही जन्मते हैं; पर माँ-बाप की भूलें, बेपरवाही, अत्यधिक लाड़-प्यार तथा अधीरता उन्हें बिगाड़ देती है। वे समस्यापूर्ण बन जाते हैं। वास्तव में समस्यापूर्ण माँ-बाप के बच्चे ही समस्यापूर्ण होते हैं।

केवल धन ही पारिवारिक जीवन को सुखी नहीं बनाता। असल में धन है सुसंतान। आप कल्पना करें किसी धनी माँ-बाप की परेशानियों की, जोकि अपने कपूतों के कारण चिंता-सागर में गोते खाते रहते हैं। अच्छे बच्चे घर के रत्न होते हैं। पर उन रत्नों को गढ़ने और बनाने का श्रेय माता-पिता रूपी जौहरी को ही दिया जाता है। बच्चों के प्रति अपने कर्तव्यों को समझने पर प्रत्येक माता-पिता अपने इन रत्नों की अधिक-से-अधिक सँभाल और परख करना सीख जायेंगे। आदर्श बच्चे कोई कल्पना की चीज नहीं हैं। प्रयत्न से सभी बच्चे नेक और अच्छे बन सकते हैं।

आये दिन देश में दंगे, समाज में उच्छृंखलता, स्कूल और विद्यालयों में विद्यार्थियों की उद्दंडता तथा पारिवारिक जीवन में जो

कलह बढ़ रही है, उन सबके मूल में हैं बच्चे की अनसुलझाई छोड़ी हुई समस्याएँ। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि मनुष्य की शारीरिक और मानसिक सभी व्याधियों का संबंध बचपन की घटनाओं से होता है। बचपन के प्रारंभिक पाँच वर्षों में बच्चों के चरित्र की जो नींव पड़ती है, उसकी छाप आगे जाकर जीवन भर उनके चरित्र पर बनी रहती है। अगर घर के प्रतिकूल वातावरण के कारण बच्चा असहनशील और स्वार्थी बन गया है, तो इसका कटु अनुभव बच्चे के संगी साथियों, पत्नी तथा उस बच्चे के बच्चों तक होगा। इसके विपरीत बच्चा अगर अपने माँ-बाप को परस्पर सहयोग, प्रेम और समझदारी से अपनी गृहस्थी चलाते, कठिनाइयों को मिलकर सुलझाते, साथ ही अच्छे पड़ोसी और नागरिक के कर्तव्य निभाते देखता है, तो वह स्वयं भी अपने संगी-साथियों, पत्नी, बच्चों के प्रति कर्तव्यपरायण और सहनशील बनेगा।

इन सब बातों को समझते हुए माता-पिता और गुरु का यह कर्तव्य है कि बच्चों को ऐसी शिक्षा दें, उनके प्रति ऐसा व्यवहार करें और ऐसे उदाहरण पेश करें कि उनका भविष्य जीवन सुखद बन सके।

बच्चों पर जब तक वे छोटे हैं, माता के चरित्र का बहुत प्रभाव पड़ता है। संसार में जितने महापुरुष हुए हैं, उनके जीवन-चरित्रों से इस बात की पुष्टि होती है कि उनकी माताजी ने बचपन में उनको स्फूर्ति और प्रेरणा दी तथा उन्हें आदर्शवादी बनाया। अधिकांश माताएँ यह समझती हैं कि बच्चे को नहला-धुला, खिला-पिला देना, या बीमारी में उसकी सेवा करना अथवा किसी पड़ोसी के आक्षेप करने पर उससे लड़कर अपने बच्चे को सही प्रमाणित करने की चेष्टा करना, उनके लिए धन जोड़ना तथा बड़े होने पर उनका विवाह कर देना, बस इसी प्रकार के कुछ अन्य फर्ज पूरे करना ही उनका काम है। उनके चरित्र-निर्माण में आमतौर से माताएँ कुछ भी दिलचस्पी

नहीं लेतीं। आरंभ में अधिक लाड़-दुलार तथा पक्षपात से जब उनके बच्चे बिगड़कर जिद्दी, भोंदू, मुँहफट, बदमिजाज तथा उद्दंड बन जाते हैं, तो वे उसे बाल लीला समझकर टालने की चेष्टा करती है। बड़े होकर यही बच्चे माँ-बाप का अपमान करते हैं, तब आजकल की पढ़ाई, जमाने की हवा तथा नई सभ्यता को कोसा जाता है, या फिर बहू के सिर पर बुराई रख दी जाती है।

कई बार ऐसा देखने में आया है कि बचपन में बाप की डाँट-डपट से डरकर और माँ के अनुरोध से पिघलकर, बच्चा बिलकुल दबा-सा रहता है। जैसे-जैसे वह बड़ा होता है अपने संगी-साथियों तथा अन्य संबंधी नवयुवकों की देखा-देखी वह भी आत्मनिर्भर होकर कुछ स्वतंत्रता प्राप्त करने और अपने दृष्टिकोण को प्रकट करने के लिए उतावला हो उठता है। पर डिक्टेटर पिता को उसका यह रुख असहनीय हो जाता है। वह उसकी पढ़ाई का खर्चा बंद कर देने की धमकी देता है तथा माता की ओर से भी बच्चे पर दबाव डलवाता है, डराता, धमकाता है। ऐसे बच्चे माँ के रोने-धोने से पिघलकर और बाप की नाराजगी से डरकर दब्बू बने रहने में ही अपनी कुशलता समझते हैं और विवाह के पश्चात् इनकी स्त्री को भी दब्बूपन का अभिनय करना पड़ता है, इसी पराधीन वातावरण में इनके बच्चे भी होते हैं। वे भी अपने माँ-बाप को लाचार-सा पाते हैं, उनमें से कुछ उन्हीं के सदृश दब्बू बनकर अविकसित रह जाते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अपने इस दब्बूपन में बच्चों के असहयोग तथा स्त्री के प्रतिरोध करने पर बाप का पुरुषत्व चोट खाकर प्रतिक्रियावादी हो जाता है और वह बहुत बुरी तरह से अपने माँ-बाप की उपेक्षा करने लगता है। यही कारण है कि आजकल बहुत-से माँ-बाप अपने सीधे-साधे दब्बू बच्चे को विवाह के पश्चात् प्रतिक्रियावादी पाते हैं, पर इस बात का सारा दोष बहू पर थोप दिया जाता है।

अगर बचपन में ऐसे नेक बच्चों के प्रति समझदारी से व्यवहार किया जाए, बाप की डिक्टेटरशिप और माँ की लाचारी से दबाकर अगर उनका व्यक्तित्व कुचलने न दिया जाए, तो ऐसे बच्चे बड़े होकर माँ-बाप के सच्चे सहयोगी और मददगार प्रमाणित हो सकते हैं।

गुटबंदी का बुरा प्रभाव—अधिकांश घरों में एक प्रकार की गुटबंदी देखने को मिलती है। बच्चे देखते हैं कि हमारी माँ, बाप से बहुत-सी बातें छिपाती है, उनसे छिपाकर घर में चीजें आती हैं, हिसाब-किताब बढ़ा-चढ़ाकर बताया जाता है और इस प्रकार से जो धन बचाया जाता है उसे माँ, बाप से चोरी छिपे खर्च करती है। बाप अगर चार दिन के लिए बाहर चला जाए, तो माँ अपने पीहर वालों को बुलवा भेजती है। सिनेमा-तमाशे तथा शापिंग जाने का प्रोग्राम भी बाप की अनुपस्थिति में ही बनता है और इस बात में बच्चे का सहयोग लिया जाता है। अगर छोटे बच्चे को इस स्थिति से लाभ न हुआ, तो वह चिढ़कर पिताजी से सारी पोल खोल देता है। उस समय घर में जो कलह मचती है, उसका पूरा-पूरा कारण नासमझ बच्चे की समझ में नहीं आता। पर वह इतना तो समझ ही जाता है कि माँ ने कोई अपराध किया है। भविष्य में माँ बच्चे-बच्चियों को अधिक फुसलाने की चेष्टा करती है और उन्हें भी बहानेबाजी करने का पाठ रटाया जाता है। इस प्रकार बच्चे बहानेबाज और प्रपंची बन जाते हैं।

इसके अतिरिक्त कई जगह स्थिति ऐसी भी होती है कि गृहिणी की घर में अधिक चलती है। अधीन संबंधियों के बच्चे उसकी आलोचना और ईर्ष्या के पात्र बनते हैं। बहू या देवरानी से बदला लेने के लिए वह अपने बच्चों से मदद लेती है। ये छोटे बच्चे घरों में सी० आई० डी० का काम करने के लिए प्रेरणा पाते हैं—भैय्या से भाभी ने क्या बात की ? भाभी ने कहाँ चिट्ठी लिखी ? किसके

साथ घूमने गई ? बाहर जाकर क्या खाया ? क्या खरीदा ? चाची ने अपने बच्चों को क्या दिया ? चाचा ने क्या कहा ? आदि खबरें लाने का काम इन्हीं बच्चों का होता है। कुसंस्कारों से ये बच्चे इतने झूठे और बदतमीज बन जाते हैं कि बड़ों-बड़ों की इज्जत धूल में मिला देते हैं। चुगलखोरी, बात का बतंगड़ बनाना, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, ठगबाजी, झूठ, मक्कारी, मुँहजोरी आदि की शिक्षा इन्हें अनजाने में माता से ही मिलती रहती है। परंतु तारीफ यह कि अधिकांश माताएँ इस कटु सत्य को स्वीकार करना नहीं चाहतीं।

बड़ों की आपसी बातचीत—स्त्रियाँ एक मूर्खता और करती हैं, जहाँ चार मिलकर बैठीं कि घर के झगड़े, परिजनों की आलोचना, गोपनीय बातों की चर्चा और गंदे हास-परिहास वे छोटे-छोटे बच्चों के सामने ही करने लगती हैं। फलस्वरूप छोटी उम्र में बच्चों को बड़ों की बहुत-सी पोल तथा 'सेक्स' विषयक बातों का पता चल जाता है। उत्सुकतावश वह कच्ची उम्र में ही परस्पर उसकी चर्चा करते हैं और ऐसे भी प्रमाण मिलते हैं कि वे क्रिया रूप में भी उसका अनुभव प्राप्त करने को उत्सुक रहते हैं। अपरिपक्व आयु में 'सेक्स' की उत्सुकता को जाग्रत् करने का दोष भी माता-पिता को ही है। बच्चों को नासमझ जानकर उनकी उपस्थिति में अशिष्ट हरकतें कभी भूलकर भी नहीं करनी चाहिए। प्रेम की उच्चता और पवित्रता का अनुभव बच्चों का माँ-बाप के व्यवहारों से ही होता है। बच्चा बड़ों के व्यवहार को चाहे पूर्णरूप से समझ न सकता हो, परंतु इतना वह अवश्य ताड़ जाता है कि अमुक व्यवहार बुरा है और उससे छिपाने की चेष्टा की जा रही है। बड़े होकर बाल्यकाल की वह स्मृति फिर ताजी हो जाती है और तब बच्चा अपने बड़ों की हरकतों की व्याख्या करके, उन्हें निकृष्ट समझने लगता है।

बच्चों से इस प्रकार के प्रश्न भी नहीं पूछना चाहिए, जिससे उनकी 'सेक्स' संबंधी उत्सुकता जागे; यथा तुम कहाँ सोते हो ?

तुम्हारी माँ कहाँ सोती है ? तुम्हारे पिताजी तुम्हें प्यार करते हैं ? काफी उम्र तक बच्चे परिचित स्त्री-पुरुष को देखते हैं, उन्हें या तो वे अपने मित्र या चाचा-चाची समझते हैं। एक बार एक छोटी लड़की अपनी माँ से बोली, "माँ आपके पीछे कोई मिलने आए थे।" नाम पूछने पर उसने बताया, "एक थी मम्मी, एक थे डैडी और साथ में था एक प्यारा-सा बेबी।" इससे अधिक परिचय प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं समझी।

कुछ अशिक्षित माताएँ बच्चों को प्यार करते हुए कहती हैं, "हमारे बच्चे को दुलहिन मिलेगी, गुड़िया-सी, भैया दुलहिन को प्यार करेगा, मैं कल-परसों ही इसका ब्याह करूँगी' आदि खेल-खेल में, प्यार के अंधेपन में, मूर्खता से हम बच्चे को तमाम बुरी बातें सिखा देते हैं। माँ या बाप का कोई रिश्तेदार जैसे बहनोई, साला आदि आते हैं, तो अपने बच्चे से उनको गाली दिलवाते हैं। कितनी जहरीली ये बातें हैं।

पक्षपातपूर्ण व्यवहार का बुरा परिणाम—कभी-कभी व्यक्तिगत लाभ के लिए बड़े बच्चों के चरित्र का खून कर देते हैं। किसी से बदला लेने के लिए या किसी को बुरा-भला कहलाने के लिए माँ या बड़े बहन-भाई बच्चों को अपना गवाह बनाकर अपनी बात को पुष्ट करने का पाठ रटा देते हैं। ऐसे तमाशे सार्वजनिक पार्कों में आम तरीके से देखने को मिल जाते हैं।

एक बार एक सेठ जी का बच्चा आँखमिचौनी खेलते समय ग्राउंड के आस-पास खिंची हुई तार में से निकलकर भागने लगा। तार से उसकी जंघा में लम्बी-सी खरोंच आ गई। दूसरे दिन जब सब बच्चे खेल के लिए इकट्ठे हुए तो उस सेठ वाले बच्चे की माँ अपनी देवरानी के लड़के रामू को पकड़कर लाई और बोली, "बहन जी" मैं इसे मारे बिना नहीं छोड़ूँगी, क्योंकि इसने कल मेरे बच्चे की जंघा में

बड़े जोर से काट खाया था। सेठ जी ने इसे खूब पीटा है और कहलवाया है कि आप इसे क्लब से निकाल दें।"

कान के ऐंठे जाने से रामू का मुँह लाल हो गया था, वह डरकर रो रहा था, इन्चार्ज महिला ने लपककर रामू को सेठानी के चंगुल से छुड़ाया और सेठ के बच्चे की ओर ताका। वह डरकर सहमा हुआ-सा एक बड़ी लड़की के पीछे छिपने की चेष्टा कर रहा था। महिला ने उसे दमदिलासा देकर सामने बुलाया और नेकर उठाकर उसकी खरोंच सेठानी को दिखाते हुए कहा, "बड़े अफसोस की बात है कि सेठानी जी आपने पूरी जाँच किए बिना ही रामू को सजा दिलवाई। आपने यह तो देखा होता कि यह खरोंच है, दाँत का काटा हुआ नहीं है।"

सेठानी जी झट बात पलटकर बोली, "दाँत से नहीं तो नाखून से नोचा होगा, यह रामू बड़ा पाजी है।"

जब उस महिला ने कहा कि, "यह चोट तो कल तार से लगी है और मैंने उसी समय उस पर टिंचर भी लगा दी थी।" तब वह बोली, "खैर तार से ही सही, पर रामू ने ही धक्का दिया था।" अब वह महिला उस सेठ के बच्चे की ओर मुड़ी, "क्यों महेंद्र ! यह कैसी बात है ? कल तो रामू धाई बनकर खड़ा था, उसने तुम्हें किस समय धक्का दे दिया ?"

महेंद्र ने आँखों में आँसू भरकर कहा, "माँ ने कहा था कि रामू का ही नाम लगा देना, नहीं तो तुझे पीटूँगी।"

अब तो सेठानी जी खिसियानी-सी होकर लगी महेंद्र को झूठा, दगाबाज बनाने। सेठानी जी की झेंप को मिटाने के लिए क्लब इन्चार्ज ने कहा, "आपको बच्चों की बातों में नहीं पड़ना चाहिए, खेल-खेल में चोट लग ही जाती है। ऐसी बातों का गिला नहीं किया जाता और न ही बड़ों तक शिकायत ही करनी उचित है।"

दूसरे दिन सुना गया कि जब रामू और महेंद्र हाथ में हाथ डाले घर पहुँचे तो सेठानी जी ने रामू को यह कहकर दो थप्पड़ लगाए कि 'तेरी' संगति में रहकर मेरा बच्चा बिगड़ गया है। जिस क्लब में तेरे जैसे कमीने खेलते हों, वहाँ मैं इसे नहीं जाने दूँगी।'

क्लब में जाना बंद होने से महेंद्र बड़ा छटपटाया, कुछ दिन तो वह मन मारकर रह गया, फिर उसने माँ से भी एक चाल खेली और बोला, "अगर तुम मुझे क्लब में नहीं जाने दोगी, तो पिताजी से तुम्हारी रोज चोरी-चोरी चाट खाने की पोल खोल दूँगा।" अब सेठानी जी को दबना पड़ा।

आए दिन, इस प्रकार की घटनाएँ परिवारों में होती हैं और बच्चों पर उनका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। बच्चे के चरित्र की आधार शिला बाल्यकाल में ही रखी जाती है। बच्चों को आदर्श बनाने के लिए माता-पिता का चरित्र भी आदर्श होना चाहिए, साथ ही घर का वातावरण भी बहुत स्वस्थ और सुखद होना आवश्यक है। पिता के द्वारा शासित और अपमानित माता या माता के द्वारा दबाया हुआ पिता दोनों ही बच्चों के पथप्रदर्शक बनने में असमर्थ हैं। माताएँ बच्चे को डराने के लिए भी कहती हैं "ठहर जा, आने दे अपने पिताजी को, आज तेरी हड्डियाँ न तुड़वाईं तो कहना, तूने तो नाकों दम कर दिया है। ठहर, अब अगले महीने से तुझे स्कूल भेजूँगी, वहीं मास्टर साहब के डंडे से तू सीधा हो जाएगा।

जो माताएँ बच्चों को इस प्रकार धमकाती हैं, वे अपना महत्त्व तो कम करती ही हैं, क्योंकि बच्चा माँ को दुर्बल समझने लगता है, साथ-ही-साथ वह मार से काबू में आने का आदी हो जाता है। दूसरी बात माँ की धमकी से पढ़ाई और स्कूल बच्चे के लिए एक हौवा बन जाएँगे, फिर भला पढ़ाई की ओर उसकी रुचि कैसे जाग्रत् होगी ?

माता-पिता के अतिरिक्त अन्य परिजनों के व्यवहार का भी बच्चों पर प्रभाव पड़ता है। अगर बड़ा भाई क्रोधालु स्वभाव का है,

घर में उसकी धाँधली चलती है, तो छोटा बच्चा भी वैसा ही होगा। अगर बड़ी जीजी झगड़ालू और कामचोर है, तो छोटी बच्ची में भी वे दोष सहज ही आ जाएँगे। संगी-साथियों की देखा-देखी बहानेबाजी तथा गाली-गलौज करना, झूठ बोलना, परस्पर लड़ना-झगड़ना आदि बातें बच्चे भी सीख जाते हैं। घर के वातावरण की छाप बच्चों पर इतनी स्पष्ट होती है कि किसी बच्चे को देखकर आप उसके रहन-सहन और माता-पिता के आदर्श तथा विचारों का सहज ही पता लगा सकते हैं।

अनेक सावधानी बरतने पर भी अगर बच्चों में दोष रह जाएँ, तो उसके कारण को खोजकर उनकी समस्याओं को सहानुभूतिपूर्वक सुलझाएँ। डाँट-डपट द्वारा बच्चे की बुराई चाहे कुछ समय के लिए दब भले ही जाए, परंतु उसका पूरा इलाज नहीं हो पाता। यही कारण है कि बड़े होकर वह फिर अधिक भयंकर रूप में उभर आती है। बच्चे स्वयं एक खुली किताब हैं। आप उनमें दिलचस्पी लें, उनकी उलझनों को सहानुभूतिपूर्वक सुनें और धीरे-धीरे उनकी भावनाओं का विकास करते चलें, तभी तो आज का बालक कल की एक महान् प्रतिभा के रूप में व्यक्त हो सकता है।

सत्य एवं शील

बाल मनोविज्ञान के प्रसिद्ध यूरोपीय विशेषज्ञ डॉक्टर नील ने अपनी पुस्तक 'बाल समस्या' में एक मनोरंजक घटना का वर्णन किया है। वे लिखते हैं कि एक व्यक्ति अपने बच्चे को मेरे पास लाया और कहने लगा कि इसे चोरी करने का दुर्व्यसन लग गया है, आप इसका सुधार करें। मैंने बच्चे के अध्ययन के लिए उसे अपने पास ठहरा लिया। मुझे मालूम हुआ कि बच्चे की आयु १३ वर्ष की थी। इसके बावजूद उसके पिता ने उसके लिए आधी टिकट खरीदी और रेलवे को जानबूझकर धोखा दिया। यह लिखते हुए नील प्रश्न करता है

कि जो बाप स्वयं अपने बच्चे के सामने झूठ बोलकर पूरे के बजाय आधी टिकट खरीदता है और रेलवे को धोखा देकर हानि पहुँचाता है, वह अपने बच्चे से यह गलत आशा क्यों करता है कि वह चोरी की आदत छोड़ दे।

हम यदि अपने दैनिक जीवन पर दृष्टिपात करें, तो पता चलेगा कि हम स्वयं ही जानबूझकर या अनजाने में अपने बच्चे को झूठ बोलने की शिक्षा देते हैं। उदाहरण के तौर पर जब कोई ऐसा व्यक्ति हमारे घर आए जिससे हम मिलना नहीं चाहते, तो हम किसी बच्चे के मुँह से कहलवा देते हैं कि 'घर पर नहीं हैं।' यद्यपि हम उस समय घर पर ही होते हैं या कभी कोई व्यक्ति कोई वस्तु माँगने आता है तो हम उसे कह देते हैं "यह तो अमुक व्यक्ति माँगकर ले गया है।" ऐसे अवसर पर हम यह नहीं, सोचते कि घर में जितने बच्चे हैं, वे सब हमारे व्यवहार से झूठ बोलना सीख रहे हैं। मजे की बात तो यह है कि हम दूसरों से नहीं स्वयं अपने बच्चों से भी झूठ बोलते हैं। झूठे वायदे करते हैं और इस प्रकार उनके मन में यह बात बिठा देते हैं कि सत्य का कोई महत्त्व नहीं।

परंतु यह हमें समझ लेना चाहिए कि आज का बच्चा ही कल का प्रौढ़ है और किसी व्यक्ति को सफलता इसी बात से नहीं मिल जाती कि उसने अपने स्वभाव के अनुकूल पेशा चुन लिया है। काम में प्रवीणता प्राप्त कर ली है। प्रत्येक व्यवसाय के कुछ विशेष नियम और ढंग होते हैं, यदि उनका ध्यान न रखा जाए तो प्राकृतिक सुझाव और प्रवीणता आदि गुण कुछ सहायता नहीं कर सकते। बहुत संभव है कि इन गुणों के बावजूद भी असफलता का मुँह देखना पड़े और सारा जीवन दयनीय दशा में बीते। संसार केवल यह नहीं देखता कि कोई व्यक्ति अपने काम के विषय में कितनी निपुणता प्राप्त किए हुए हैं; वह यह भी देखता है कि वह अपने पेशे के व्यावहारिक नियमों से भी परिचित है अथवा नहीं।

कोई भी व्यवसाय हो उसे व्यापार से भिन्न नहीं समझा जा सकता। एक टोकरी उठाने वाला मजदूर भी वास्तव में एक व्यापारी है। वह अपना शारीरिक श्रम बेचकर जीवनयापन करता है। दफ्तर में काम करने वाला क्लर्क भी एक व्यापारी है। वह अपने मानसिक परिश्रम का बदला लेता है और दुकानदार तो व्यापारी है ही। वह अपना माल देता और दाम पाता है। इसी प्रकार वकील, डॉक्टर, इंजीनियर सभी व्यापारी हैं। प्रत्येक व्यक्ति संसार की मंडी में अपना माल बेचकर अपना पेट पाल रहा है। अत: यह कहना गलत नहीं होगा कि व्यापार के नियम प्रत्येक पेशे के आधारभूत नियम होने चाहिए। किसी पेशे को इन नियमों से मुक्त नहीं कहा जा सकता।

ईमानदारी सर्वोपरि

व्यवसाय के व्यावहारिक नियमों के जिक्र में सर्वप्रथम स्थान ईमानदारी का है। इसलिए नहीं कि यह एक धार्मिक आज्ञा है और सभी धर्मों ने इसको बहुत महत्त्व दिया है, वेद, शास्त्रों और धार्मिक ग्रंथों में सत्य की बड़ी महिमा गाई है, वरन् इसलिए कि ईमानदारी सर्वोत्तम नीति है। इससे ठोस और दृढ़ परिणाम निकलते हैं। इसमें उन्नति का रहस्य छिपा हुआ है। ईमानदारी से अच्छा कोई विज्ञापन नहीं। इससे अच्छी कोई साख नहीं। यह मनुष्य के मानसिक और भौतिक विकास का अमूल्य नियम है।

संसार में ईमानदार व्यापारियों और कर्मचारियों की सदा माँग रही है। वह फर्म, वह दुकान, वह क्लर्क और वह मजदूर बड़ा भाग्यवान् है जिसके साथ बरतने वाले लोग उसे ईमानदार समझते हैं। असफलता अधिकतर उन्हीं लोगों के हिस्से में आती है, जो लेन-देन के खरे नहीं होते। जो अपने असामियों, ग्राहकों और मालिकों को धोखा देते हैं। जो समय में, धन में, माल में बेईमानी को अपना स्वभाव बना लेते हैं।

कारोबार या पेशे का उद्देश्य लोगों को बुद्धू बनाकर अपना उल्लू सीधा करना नहीं। यह ठीक है कि कुछ लोग चालाकी और धोखे से भी सफल हो जाते हैं। परंतु उनकी सफलता वास्तव में कोई सफलता नहीं। एक पुरानी लोकोक्ति है और उसके ठीक होने में कोई संदेह नहीं कि "काठ की हाँड़ी बार-बार नहीं चढ़ती।" बेईमानी और धोखे का भाँडा एक न एक दिन अवश्य फूटता है।

एक वृद्ध व्यापारी को मैं वर्षों से जानता हूँ। उनका देहांत हो चुका है। ईमानदानी उनके कारोबार का आधारभूत नियम था। वह अपने कारखाने में बढ़िया-से-बढ़िया माल तैयार करते थे। उनके पास जो ग्राहक आता वह बच्चा हो या बूढ़ा, अज्ञात व्यक्ति हो या अपना संबंधी सबके साथ समान व्यवहार करते। ऐसा कभी नहीं हुआ है कि कोई प्रियजन उनके निश्चित दामों में कोई कमी करवाने में सफल हो सका हो। ऐसा भी कभी नहीं हुआ कि किसी अनजाने व्यक्ति से उन्होंने कभी अधिक दाम लिए हों।

लोगों को उनके तैयार किए हुए माल और उनके लगाए दामों पर पूरा भरोसा था। उनका प्रत्येक ग्राहक उनका चलता-फिरता विज्ञापन था। दूर-दूर से व्यापारी उनसे माल खरीदने के लिए आया करते थे और वह केवल इसलिए कि उनकी ईमानदारी प्रसिद्ध थी।

ईमानदारी मित्र बनाने में सहायता करती है और मित्र सफलता का मुख्य आधार समझे गए हैं। एक बार मेरे एक मित्र ने बताया कि वे एक बार पुस्तक विक्रेता की दूकान पर गए, उससे कुछ पुस्तकें खरीदीं। वापस आते समय वे अपना बहूमूल्य कलम उसकी दूकान पर भूल आए। उन्हें याद भी न रहा कि कलम कहाँ रखकर भूल गए हैं। कई सप्ताह बाद उन्हें फिर उस दूकान पर जाने का अवसर हुआ। दूकानदार ने उन्हें देखते ही मेज की दराज खोली और कलम निकालकर उनके हवाले कर दिया। मेरे मित्र के मन पर उसकी ईमानदारी का गहरा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। इस घटना को कई

वर्ष बीत गए परंतु वे आज तक भी नहीं भूले और न कभी भूल सकते हैं। साथ ही वे उस दुकानदार के स्थायी ग्राहक बन गए।

हम देखते हैं कि अँग्रेजी, जर्मनी तथा अमेरिकन माल की बाजार में बड़ी माँग रहती है। उनका मूल्य चाहे अधिक हो लेकिन भारतवासी भी उसी को खरीदना पसंद करेंगे। इसका एकमात्र उत्तर यही है कि उनके माल में सच्चाई है। जो कुछ लिखा रहता है माल उसी तरह का होता है। इसके विपरीत हमारे देश की कम्पनियों में प्राय: अधिकाँश धोखे पर अपने व्यापार को आधारित करती हैं। दीयासलाई जैसी छोटी वस्तु से लेकर बड़ी-बड़ी वस्तुओं में, दवाओं में, खाद्य पदार्थ आदि सबमें मिलावट ज्यादा दिखती है। यही कारण है कि अपने कारोबार को न तो ख्याति दे पाते हैं न उससे स्थायी रूप से धन ही कमा पाते हैं।

बच्चे सत्यनिष्ठ कैसे बनें ?

यह बात भी विश्वास करने योग्य है कि सदा ही सत्य और असत्य कठिन होता है। झूठ बोलने में, बेईमानी करने में, ठगने में, चोरी करने में, व्यभिचार में, चालाकी में, चतुराई में, होशियारी और पेशबंदी की बड़ी आवश्यकता है। इसके विपरीत सच बोलने में, पूरा तौलने में, ईमानदारी बरतने में, सदाचारी रहने में किसी खटखट की जरूरत नहीं। लेकिन संचित संस्कारों, पुरानी आदतों और वातावरण के दुष्प्रभावों के कारण सन्मार्ग पर चलते-फिरते पैर फिर जाता है, आदमी सत्य के विपरीत झूठ का अवलंबन लेता है। इसलिए आवश्यक है कि बचपन से ही सत्य बोलने की आदत डाली जाए।

(१) बच्चे में सत्य बोलने की आदत डालने हेतु जो सबसे बड़ा प्रयास करना है, वह यही कि माँ-बाप स्वयं सच बोलें। झूठे माँ-बाप अपने बच्चे में सत्य के प्रति आस्था पैदा ही नहीं कर सकते। महात्मा गांधी ने सत्य का पाठ अपने पिता से पढ़ा था। उनके पिता राजकोट रियासत के दीवान थे परंतु सदैव सत्यता के मार्ग पर चलना उन्हें

पसंद था। एक बार सत्य बोलने के लिए उन्हें राजा का कोपभाजन भी होना पड़ा और वे जेल तक भेज दिए गए। परंतु उन्हें छोड़ दिया गया उनकी स्थायी ख्याति हो गई। व्यक्तिगत उदाहरण सबसे महत्त्वशाली और प्रभावकारी माना गया है। बच्चा चाहे हजार पुस्तकों में सत्य की महिमा का प्रतिपादन करने वाले श्लोक, चौपाइयाँ और दोहे क्यों न पढ़ लें लेकिन यदि कोई व्यक्ति अथवा उसका वातावरण सत्य की महिमा को स्वीकार नहीं करता, तो वह भी सत्य के प्रति आस्थावान् नहीं बन सकेगा। माँ-बाप के ज्वलंत उदाहरण ने बालक मोहनदास करमचंद गांधी में सत्य के प्रति निष्ठा पैदा कर दी। पाठशाला में जब निरीक्षक आया तो अपने मास्टर के संकेत करने पर भी उन्होंने अपने साथी विद्यार्थी की कापी से देखकर 'स्पेलिंग' ठीक नहीं किया। यह केवल उनके माता-पिता का प्रभाव था।

(२) सत्य के लिए वातावरण चाहिए। माता-पिता के उदाहरण के साथ-साथ परिवार एवं बच्चे के साथियों को भी ऐसा होना चाहिए, जो सच्चाई को जीवन-नीति समझते हों। धार्मिक भाषा में इसी को 'सत्संग' शब्द से संबोधित किया गया है। जिन बच्चों को आदर्श व्यक्तियों के संपर्क में आने का सुअवसर बचपन से मिल जाता है, उनका चरित्र हीरे के समान चमकदार बनता जाता है। यद्यपि आज सच बोलने वालों की तुलना में झूठे लोगों की बहुतायत है, फिर भी ऐसा नहीं माना जा सकता कि सच्चे लोग हैं ही नहीं। हर क्षेत्र और हर गाँव में ऐसे लोग होते ही हैं। माँ-बाप को चाहिए कि गाँव, मुहल्ले अथवा नगर के ऐसे लोगों, जिनको वह भली भाँति जानते हों, उनके पास लड़के को कभी-कभी ले जाकर परिचय करा दें। बच्चे के दिल में उनके प्रति आस्था पैदा करके उन्हें यह उपदेश भी दे दें कि कभी-कभी इनके पास अवश्य आया करें, ताकि उनके संपर्क से उसे बहुत कुछ शिक्षा मिले। दूर रहने वाले सत्यवादी और आदर्श

लोगों से बच्चे का पत्र संबंध कराना चाहिए। दो चार लोगों के नाम-पते यदि पिता अपने बच्चे को बताकर किसी तात्कालिक समस्या पर अपने से उनको पत्र लिखा दे तो उत्तर आने से बच्चे में स्वयं उन लोगों के प्रति रुचि पैदा होगी। तब वह उनको पत्र लिखना आरंभ करेगा और धीरे-धीरे उनके चरित्र का प्रभाव बच्चे पर पड़ता रहेगा।

(३) बच्चे के संगी-साथी ऐसे होने चाहिए जैसा कि आप अपने बच्चे को बनाना चाहते हैं। लोफर, गुंडे या फैशनपरस्त लड़कों के साथ उठने-बैठने अथवा खेलने-टहलने की अनुमति आप बच्चे को कदापि न दें, चाहे आपको कुछ कड़ाई ही क्यों न बरतनी पड़े ! आप बच्चे की मुँहदेखी न कर उसे बुरे लड़कों के साथ संपर्क रखने से मना करें।

साधारणतया १४-१५ वर्ष की अवस्था होती है जब बच्चे के अंदर उमंग होती है। वह हर अच्छाई-बुराई का मजा चखने की चेष्टा करता है। सभी के संपर्क में आने की चेष्टा करता है। इसमें उसे कोई दोष नहीं मालूम होता। जब माँ-बाप उसे किसी विशेष सोसाइटी में जाने से रोकते हैं, सिनेमा अथवा नाटक देखने से रोकते हैं तो वह तरह-तरह के तर्क देकर अपनी श्रेष्ठता एवं दुर्भावना को सिद्ध करने की चेष्टा करता है। माँ-बाप के निर्देशों के औचित्य का अपने तर्कों से खंडन करके अपनी बात को सही सिद्ध करता है। इस आयु में बच्चों की तर्कशक्ति बढ़ जाती है। ऊँची शिक्षा और अनुभव वाले व्यक्ति तो अपने बच्चों पर तार्किक दृष्टि के प्रभाव से सफल हो जाते हैं लेकिन साधारण योग्यता वाले माँ-बाप अपने बच्चे के प्रभाव में आ जाते हैं। इसलिए इस अवस्था में चाहे थोड़ी कड़ाई करना पड़े मगर बच्चे को बुरी सोसाइटी में उठने, बैठने, खेलने आदि की अनुमति न दी जानी चाहिए। उसे खेलने, घूमने, टहलने तथा मनोरंजन का अवसर दिया जाए लेकिन बुरी सोसाइटी के साथ नहीं।

(४) सत्यता के मार्ग पर चलकर कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर सफलता पाने वाले भूत तथा वर्तमान कालीन व्यक्तियों के उदाहरण भी बच्चे के सामने रखने चाहिए। ऐसे लोगों के जीवन चरित्र पढ़ने के लिए बच्चों को पुस्तकें भी उपलब्ध करनी चाहिए तथा उन्हें उत्साहित भी करना चाहिए।

(५) सत्य बात कहने, सत्य आचरण करने अथवा सत्यता का कोई उदाहरण प्रस्तुत करने पर बच्चे की प्रशंसा करने से कभी भी चूकना न चाहिए। यदि किसी समय बच्चे ने सत्य का उदाहरण प्रस्तुत किया तो उसकी पीठ ठोंकिए, सार्वजनिक रूप से उसकी प्रशंसा कीजिए और उसे उपयोगी वस्तुएँ, पुरस्कार भी दीजिए।

बच्चे प्रायः भय के कारण झूठ बोलने का आश्रय लेते हैं। बच्चों से भूलें तो हो ही जाती हैं। मान लीजिए अनजान में उन्होंने कोई वस्तु तोड़ डाली। उनके मन में भय पैदा होगा कि पिताजी अथवा माताजी को जब मालूम होगा तो वे सजा देंगी। इसी भय के कारण वे तुरंत इनकार कर देंगे कि उनसे अमुक वस्तु नहीं टूटी है। मैंने बचपन में एक दिन सहसा बाहर से आकर एक बड़े पत्थर से घर की 'सिल' को तोड़ डाला। यद्यपि मैं उसे तोड़ना नहीं चाहता था परंतु अनजाने में वह पत्थर उस सिल पर इतनी जोर से पड़ा कि उसके दो टुकड़े हो गए। मैंने उठाकर एक कोने में खड़ी कर दी और स्वयं बाहर चला गया। शाम को जब वापस आया तब तक सिल टूटने की बात प्रकट हो चुकी थी और मैं मुजरिम घोषित हो चुका था। मुझ से जब पूछा गया तो साफ इनकार कर दिया। लेकिन अंत में पकड़ा गया। इस प्रकार बच्चे भय के कारण झूठ बोलते हैं। माँ-बाप यदि उन्हें भय रहित करें और प्रोत्साहित करें कि कोई भूल होने पर भी वे सदा सत्य बोलेंगे, तो उन्हें सजा नहीं मिलेगी तो बच्चों को सत्य बोलने का प्रोत्साहन मिलेगा। इसी प्रकार विद्यालय में अध्यापक भी यदि सत्य बोलने पर, बच्चे को भयभीत करने के बजाय उसके साथ

सहानुभूति दिखाएँ तो बच्चे के मन में सत्य के प्रति आस्था पैदा होगी।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने सत्य को ध्वज, तो शील को पताका की उपमा दी है। पताका के सहारे ही ध्वज लहराता है। बिना पताका का ध्वज रखा हुआ साधारण वस्त्र मात्र है। इसी प्रकार सत्य की शोभा शील से होती है, अँगूठी में नग जिस प्रकार अँगूठी की शोभा बढ़ाता है, शील सत्य की शोभा बढ़ाता है। दोनों एक-दूसरे पर अन्योन्याश्रित हैं।

केवल सत्यभाषी के हृदय में अहंकार उत्पन्न होता है। सत्यभाषी यदि शील का सहारा न ले, तो वह अहंकारी हो जाता है। नग्न सत्य प्रायः कटु होता है इस प्रकार सत्यभाषी को श्रेय मार्ग पर ले जाने के बजाय उसे नाना प्रकार के कलहों में फँसा देता है। वह व्यक्ति अपने पास-पड़ोस वालों की आँखों में खटकने लगता है। सभी लोग उसके विरुद्ध एक मोर्चा बना लेते हैं। फिर उसका सारा समय आपसी प्रतिद्वंदिता में ही लगने लगता है और सत्य भाषण का पूरा-पूरा लाभ उसे नहीं मिल पाता। इसीलिए कहा गया है कि **"सत्यम् ब्रूयात् प्रियम् ब्रूयात्।"**

"सत्य बोलो लेकिन प्रिय बोलो। ऐसा सत्य न बोलो जो प्रिय न हो।"

महात्मा गांधी का सत्य शील से ओत-प्रोत रहता था। जीवन भर उन्होंने सत्य और अहिंसा का प्रचार किया लेकिन दोनों को प्रेम पर ही आश्रित किया। वे अपनी सत्यता पर हिमालय के समान दृढ़ और अचल रहते थे, भारी-से-भारी विपत्तियाँ भी उन्हें अपने मार्ग से विचलित नहीं कर सकती थीं। परंतु व्यवहार में वे अपने विरोधी से भी रूई के समान मुलायम थे। कभी भी उन्होंने रूखेपन से बात नहीं की। वार्त्ता के समय सदैव उनके होठों पर प्रसन्नता नाचती रहती थी। वे अपनी बात को इस प्रकार कहते थे कि सुनने वाले को

कर्णकटु न लगे, वरन् वह उसकी वास्तविकता को हृदय से स्वीकार करें, दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि मीठी वाणी से वे अपने विरोधियों के हृदय तक अपनी बात को उतार देने में सफल हो जाते थे।

सद्व्यवहार और शालीनता—ठीक इसी प्रकार हमें अपने बच्चों को अभ्यास कराना चाहिए। एक सबसे बड़ी कमी जो हमें अपनी समाज में देखने को मिलती है, वह यही है कि अधिकांश लोग बातचीत का ढंग नहीं जानते। बच्चे तो इससे और भी अनभिज्ञ हैं। कोई बात कहेंगे तो आधी बात अपने मुँह में रख लेंगे, जल्दी-जल्दी इस प्रकार अपनी बात कह डालेंगे कि सुनने वाला समझ ही नहीं पाएगा कि यह व्यक्ति क्या कह रहा है। हाईस्कूल एवं इंटर पास विद्यार्थियों को आप देखें उन्हें अपनी बात ढंग से प्रकट करने की योग्यता नहीं होती। बी० ए० में पहुँचते-पहुँचते अभिमान की टोपी उनके सिर पर लग जाती है। चलेंगे तो अकड़कर इधर-उधर कपड़ों को देखते हुए, बातें करेंगे तो अकड़कर, मानो वे बहुत बड़े उच्चाधिकार के पद पर पहुँच गए हों। अपने अध्यापकों के सामने तो हर वाक्य के साथ 'जी' जोड़ेंगे मगर किसी बाहर वाले से उनकी बात सुनिए तो इतना बहककर, अकड़कर उच्छृंखल बातें करेंगे मानो जमीन-आसमान का कुलावा मिला देने की क्षमता उनमें आ गई हो।

ठीक ढंग से बातचीत करने का प्रभाव अपार है। बात का मर्म जानने वाले को किसी जादूगर से कम नहीं समझना चाहिए। वह हर एक से अपना काम बना लेता है। हमारे विद्यालय में एक लड़का है, वैसे तो वह काम करने में अधिक सक्रिय नहीं है लेकिन बातचीत करने का ढंग उसे मालूम है, सत्यभाषी भी है। मीठी-मीठी बोली बोलकर अपना काम बना लेने की कला में निपुण है। एक बार उसे एक अन्य स्कूल से टी० सी० लानी पड़ी। जब वह वहाँ गया तो लिपिक ने तीन दिन के बाद 'टी० सी०' देने को कहा। वास्तव में

नियम भी यही है और वह उस समय कार्य व्यस्त भी था। परंतु कुछ देर चुप बैठने के बाद इस लड़के ने अपनी बात का जादू 'लिपिक' पर चढ़ाना शुरू किया। वह इससे इतना प्रसन्न हो गया कि स्कूल बंद होते टी० सी० बनवाकर प्रधानाचार्य के हस्ताक्षर कराकर इसे दे ही दिया।

बात तलवार से भी अधिक शक्तिशाली होती है। जिसे बात करने की कला का ज्ञान हो गया, उसकी शक्ति, राजा की शक्ति से भी बड़ी माननी चाहिए।

यह बात आती है 'शील' के अभ्यास से। बचपन से ही आप बच्चे को ठीक ढंग से बातचीत करने का अभ्यासी बनाएँ। शील का प्रत्यक्ष प्रदर्शन विनम्रता से होता है। शीलवान् व्यक्ति विनम्र होता है, वह जब भी अपनी बात कहेगा, विनम्रता से कहेगा। क्रोध के अवसर पर भी अकड़कर अपनी बात न कहना विनम्रता है।

महात्मा गांधी अपनी सत्य बातों को कहते समय दूसरों की सुनते भी थे और बड़े तरीके से सबकी बातों का उत्तर देते थे।

मधुर भाषण कैसे सिखाएँ ?—बच्चों को आप जहाँ सत्य-भाषी बनाने का अभ्यासी बनाएँ, वहाँ ठीक ढंग से बात करने का तरीका भी बताएँ, जिसे आप निम्नलिखित उपायों से कर सकते हैं।

(१) 'शील' की बात 'शील' से ही समझना चाहिए। कभी-कभी जब माँ-बाप को अपने व्यस्त जीवन में अवकाश मिले, सायंकाल का समय इसके लिए अधिक उपयुक्त हो सकता है, तब अपने बच्चों को एक साथ बिठाकर उनसे बातचीत करना चाहिए। इसी बातचीत के दौरान में उन्हें विनम्रतापूर्वक बात करने का तरीका समझाना चाहिए। उदाहरण द्वारा उन्हें समझाना चाहिए और जीवन में उसकी उपयोगिता भी बतानी चाहिए। यह क्रम एक-दो बार न चले, वरन् महीने में दो-एक बार जिस दिन आपको भी अवकाश हो और बच्चे के स्कूल में छुट्टी हो तभी होना चाहिए। सायंकाल आप

अपने बच्चों को लेकर टहलने जाएँ, घर भर का मनोरंजन भी होगा और बातों-बातों में उन्हें आप बात करने का ढंग सिखाएँगे।

(२) आप स्वयं उनसे कोमलतापूर्वक हँस-हँसकर बातें कीजिए। जिस समय आप उन्हें सिखा रहे हैं अथवा अन्य अवसरों पर भी आपके बात करने का तरीका बहुत ही सुधरा हुआ होना चाहिए। उसकी कसौटी यह है कि बात करते समय आपका चेहरा प्रसन्न रहे, ऐसा कभी प्रकट न हो कि आप क्रोधावस्था में बातें कर रहे हैं। दूसरी बात यह है कि आपकी बात से आत्मीयता, सहानुभूति एवं सच्चाई की झलक आती हो। ये तीनों गुण ऐसे हैं जो स्वयं श्रोता पर अपना प्रभाव डाल देते हैं। यदि आपकी बात में ये तीनों बातें हैं तो यह हो नहीं सकता कि उसका प्रभाव न पड़े। बच्चे का हृदय भी खुलेगा और वह घुल-मिलकर आपसे बात करना प्रारंभ करेगा। तब आप देखते रहें कि बच्चे के बात करने में क्या दोष हैं ? उन दोषों को भी आप धीरे-धीरे समझा-बुझाकर ठीक करें।

(३) बात करने में किन शब्दों पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए, किन पर कम, किस समय क्या बात कहनी चाहिए ? श्रोता के 'मूड' को देखकर उसी के अनुसार बातें करनी चाहिए। इन रहस्यों को भी आप क्रियात्मक रूप से बच्चे को सिखाते रहें।

(४) आपके घर में जब मेहमान आवें, अथवा कोई भी मिलने-जुलने वाले आवें, आप कहीं अपने बच्चों को लेकर जाएँ, ट्रेन में यात्रा करें अथवा किसी भोज आदि में जाएँ, तो ऐसे स्थानों पर आप ज्यादा-से-ज्यादा अपने बच्चे को बात करने का अवसर दें। आप कम बोलें अथवा अपनी समान आयु वाले से चाहे आप ज्यादा बात करें लेकिन बच्चे को बात का अवसर अधिक दें। घर पर आने वालों को नाश्ता करने, खिलाने, कोई चीज लेने-देने का अधिकांश कार्य आप बच्चे से लें। जिस प्रकार राजा अपने बड़े पुत्र को युवराज बनाकर राजकार्य में उसे हिस्सा बाँट देता है, प्रजा से संबंध स्थापित करना, सेना-संचालन एवं प्रशासकीय कर्तव्यों में उसका विधिवत् सक्रिय

सहयोग लेता है, उसी प्रकार आपका १५ वर्षीय पुत्र आपका उत्तराधिकारी है, अपने घर के आप राजा हैं तो वह युवराज है। उसे अपने सब कर्तव्यों को सिखाइए। जब आपके सामने वह गृहस्थी के कामों में हिस्सा बँटाने लगेगा, तो उसका अनुभव बढ़ेगा और जिम्मेदारी आवेगी।

कर्तव्य को निभाने में सबसे बड़ी बात जो बच्चे को सिखानी है, वह है सच्चाई के साथ बातचीत करके दूसरों की सहानुभूति प्राप्त कर लेना। यदि आपका बच्चा अपनी बातों से दूसरों को मित्र बनाने और बड़ों की सहानुभूति प्राप्त करने में सफल होने लगे तो आप निश्चिंत हो जाइए और इस बात पर विश्वास कर लीजिए कि वह आपका योग्य उत्तराधिकारी निकलेगा।

(५) घर में अपने साथियों से, बहनों से तथा माँ से व घर की अन्य स्त्रियों से वह किस प्रकार बातें करता है, इस पर भी आपको ध्यान रखना है। प्राय: यह भी होता है कि बच्चों की जिनसे पटती है, या जिन लोगों से वह अपनत्व अनुभव करता है, उनसे तो उसके बात करने का तरीका दूसरे ढंग का होता है और जिनसे उसकी पटती नहीं है, उनसे वह अकड़-अकड़कर, तैश में आकर बातें करता है। आप इन बातों को चुपके-चुपके देखते रहें और फिर बच्चे को समय पाकर प्रेम से समझावें कि उसे हर एक से ठीक ढंग से, सलीके से बातें करनी चाहिए। चाहे उससे अपनी पटती हो या नहीं। विचार-भिन्नता रखना दूसरी बात है लेकिन बेढंगे तरीके से बात करना किसी भी प्रकार शोभनीय नहीं है।

(७) इसी प्रकार आप बच्चे के बाहरी क्षेत्र की देखभाल करते रहें। अब तो घर से अधिक उसका कार्यक्षेत्र बाहर है। स्कूल, बाजार, मुहल्ला आदि सबमें उसका आना-जाना है, वह अपने मित्रों के परिवारों से भी संबंध रखता है, उनके घर आता-जाता है। बाहरी दोस्तों से पत्र-व्यवहार भी करता है। इन सब पर आपकी निगाह

रहनी चाहिए। कभी-कभी जब आप स्कूल जाएँ, तो शिक्षकों और बच्चे के सहपाठियों से पता लगाएँ कि उसका आपसी व्यवहार कैसा है ? यदि वह सत्य और शील को अपने आचरण में अपनाए हुए है, तो निश्चित जानिए कि उसके शिक्षक, सहपाठी सभी उससे प्रसन्न होंगे और उसके प्रति उनकी सहानुभूति होगी। इसी प्रकार, बाजार मुहल्ला अथवा गाँव में भी आप जानकारी रखें। एक सी० आई० डी० के समान पता लगाने का कार्य न करें क्योंकि इसका पता लगने पर आपका बच्चा आपसे द्वेष भाव रख सकता है, तब आपकी किसी बात का प्रभाव उस पर न पड़ेगा लेकिन वैसे ही चलते-फिरते, बातचीत करते अगर आप अपने बच्चे का जिक्र ले आते हैं, तो उससे सत्य बातें प्रकाश में आ जाती हैं। आपको पता चल सकता है कि तब आप भली प्रकार सोचिए कि जो बातें आप उसे सिखा रहे हैं, उस पर वह कहाँ तक अमल कर रहा है। यदि उसमें किसी प्रकार की कमी दीख पड़े, तो उसे सुधारने की चेष्टा कीजिए।

इस प्रकार धीरे-धीरे परंतु धैर्यपूर्वक आप अपने बच्चे को सत्य और शील रूप निधियों को उत्तराधिकार रूप में देने में यदि सफल होंगे तो आपका बच्चा भी जीवन भर सुखी रह सकता है और आपको भी संतोष करने का अवसर मिलेगा। एक कहावत है।

तुलसी मीठे वचन ते सुख उपजत चहुँ ओर।
वशीकरण एक मंत्र है तज दे वचन कठोर॥

मीठी बोली बोलने का अभ्यास कर बच्चा अपनी जीवनयात्रा सुख, शांति और प्रसन्नतापूर्वक पूर्ण करेगा।

बल और विवेक

सुखी बनने की क्षमता 'शक्ति' में है। शक्ति ही वास्तविक संपत्ति है। जीवन को प्रकाशित, प्रतिष्ठित एवं संपन्न व सुस्थिर बनाने के लिए स्वस्थ शरीर और विवेक अर्थात् दूरदर्शितापूर्ण व्यवहार की

आवश्यकता है। कमजोर व्यक्ति चाहते हुए भी कुछ कर सकने में असमर्थ होते हैं। शरीरबल इसीलिए सबसे बड़ा बल माना गया है कि इसके सहारे जीवनयात्रा चलती है। बचपन से बच्चे के शरीर को स्वस्थ रखने के लिए माँ-बाप को हर संभव प्रयास करना चाहिए। वैसे तो एक समय था जब शरीरबल पर ही हमारी उन्नति-अवनति निर्भर करती थी। लेकिन आज वैसी स्थिति नहीं है। बुद्धिबल की प्रधानता होती जा रही है। परंतु शारीरिक बल की आवश्यकता और उपयोगिता से कोई इनकार नहीं कर सकता।

अच्छे स्वास्थ्य के लिए अच्छी खुराक, व्यायाम तथा स्वच्छता की आवश्यकता होती है।

विटामिनयुक्त भोजन बच्चे को दिए जाने की बात पिछले प्रसंगों में कही जा चुकी है। १४-१५ वर्ष की आयु में बाजार की चटोरी चीजें खाने की लत पड़ जाती है। बाजार में जाने पर चाट खाए बिना उनकी जी नहीं मानता। इतनी चमकीली, स्वादिष्ट एवं तत्काल आनंद देने वाली चीजों का आजकल चलन हो गया है कि उनके आकर्षण से बच्चे का बच पाना बहुत कठिन है। लेकिन यदि सतर्कता रखी जाए, तो इस ओर काफी प्रयास किया जा सकता है। व्यायाम करना, टहलने जाना, स्वच्छता रखने से बच्चे का स्वास्थ्य ठीक रहता है। लेकिन सबसे बड़ी बात यह है कि मनुष्य की मानसिक स्थिति का उसके शरीर पर सीधा प्रभाव पड़ता है। यदि किसी अच्छे-भले युवक को यह भ्रम हो जाए कि वह बीमार है तो उसका बीमार हो जाना संभव है। इसके विपरीत यदि कोई लड़का यह विश्वास कर ले कि वह स्वस्थ है तो उसका स्वस्थ हो जाना संभव है। विचारों की शक्ति के इस रचनात्मक व ध्वंसात्मक परिणामों से कोई इनकार नहीं कर सकता।

शरीर की अपनी कोई इच्छा नहीं, कोई राय नहीं और कोई अधिकर नहीं। मस्तिष्क सारे शरीर का सम्राट् है और इस पर राज्य

करता है। उदाहरणतः जब वह देखता है कि शरीर जिस सड़क पर चल रहा है, उसी सड़क पर सामने से मोटर आ रही है, तो तुरंत एक ओर हट जाने की आज्ञा देता है। शरीर हट जाता है और खतरे से बच जाता है। हमारे हाथ, हमारे पाँव, हमारी आँखें, हमारा सिर हर खतरे और हर दुर्घटना के समय मस्तिष्क की आज्ञाओं के पालन के लिए तैयार रहते हैं। परंतु यदि मस्तिष्क ड्यूटी पर न हो—यह नींद, नशे या अचेतनता की अवस्था में हो तो इसके अतिरिक्त कोई शक्ति ऐसी नहीं, जो हमारे शरीर को खतरे या दुर्घटना की चेतावनी दे सके।

मानसिक स्वास्थ्य की सुरक्षा—मस्तिष्क जीवन की धुरी है। वातावरण से प्रभावित होकर यह जितना निराशा, दुःख, हर्ष और आनंद प्राप्त करेगा, उतना ही यह सब शरीर पर अच्छा या बुरा प्रभाव डालेगा। जिस युवक का मानसिक स्वास्थ्य अच्छा नहीं, वह सदा चिंताग्रस्त रहता है। जो जीवन को आशावादी के बजाय निराशावादी दृष्टिकोण से देखता है, अपने आप को कल्पित खतरे से घिरा समझता है और भविष्य में आने वाले कल्पित दुःखों से भयभीत रहता है, उसने एक प्रकार से जानबूझकर अपने शरीर में कीटाणुओं को पलने दिया है जो उसे घुन की तरह खाते रहते हैं, उसके स्वस्थ रहने के विषय में कुछ विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता। जिसे अपने स्वास्थ्य से प्रेम है, उसे अवश्य ही अपनी मानसिक स्थिति बदलनी पड़ेगी।

मानव मस्तिष्क की स्वास्थ्य बाधक बहुत-सी विकारयुक्त भावनाएँ हैं। क्रोध का प्रभाव पेट पर बुरा पड़ता है। यह रक्त को पानी के समान पतला कर देता है। चिंता, घृणा, ईर्ष्या, घबराहट, निराशा, रोष, उदासी बेदिली और चिड़चिड़ापन आदि भी भय के ही घातक परिणाम हैं। इसी प्रकार चिंता भी शारीरिक स्वास्थ्य की शत्रु है। बहुत-से लोग अपने बच्चों को अच्छा खाना खिलाते हैं, व्यायाम,

आदि पर भी बल दिया करते हैं, फिर भी वे स्वस्थ नहीं रहते। चिंता ने उन्हें रोगी बना रखा है। ऐसी घटनाएँ देखने और सुनने में आई हैं कि चिंता के कारण एक ही रात में सारे बाल सफेद हो गए। ईर्ष्या भी मस्तिष्क की स्वास्थ्य-घातक अवस्थाओं में शामिल है। किसी ईर्ष्यालु व्यक्ति के मुँह पर कभी ताजगी और प्रसन्नता दिखाई नहीं दे सकती।

भ्रम और भय का बड़ा निकट संबंध हैं। ये दोनों बच्चे के जीवन के बहुत बड़े शत्रु हैं। जिस युवक को कोई भ्रम होगा, उसे कोई-न-कोई भय अवश्य परेशान करता रहेगा। जिस लड़के ने भ्रम और भय को स्वीकार कर लिया उसकी इच्छाशक्ति और सुरक्षा शक्ति दोनों ही बेकार रह जाएँगी।

वह युवक बड़ा भाग्यवान है जिसकी मानसिक अवस्था आशापूर्ण और स्वस्थ है। परंतु स्मरण रखना चाहिए कि किसी भी व्यक्ति की मानसिक अवस्था उसके बाल्यकाल के शिक्षण और वातावरण से ऊँची नहीं हो सकती। जो माता-पिता हर समय अपने बच्चों को डाँटते-डपटते हैं, उन्हें लज्जित करते और मारते-पीटते रहते हैं, उनके नन्हें हृदयों को कटाक्षों से घायल करते रहते हैं, उन्हें देवों, परियों और जिन्नों के किस्से-कहानियाँ सुनाकर कायर बना देते हैं, उन्हें प्रशंसा, आदर और मनोरंजन से वंचित रखते हैं। उनके बच्चे मानसिक तौर पर जीवन भर बच्चे ही रहते हैं। उनके मस्तिष्क पर हर समय निराशा और उदासी की छटा छाई रहेगी। वे किसी कठिनाई, किसी दुर्घटना और किसी रोग का बहादुरी से सामना नहीं कर सकेंगे तथा वे अपना सारा जीवन सहमकर ही बिताएँगे।

प्रशंसा, हर्ष और प्रोत्साहन से परिपूर्ण बचपन ही जीवन भर के दृढ़, महान, निर्भीक विचारों और अच्छे स्वास्थ्य की आधारशिला बनता है।

अच्छे स्वास्थ्य के इच्छुक युवक को अपने विचारों की पवित्रता और शिष्टता की ओर भी अवश्य ध्यान देना पड़ेगा। उसे सभी मानसिक बुराइयों से बचना होगा। मेरा अपना अनुभव है कि झूठ बोलने से स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। झूठ बोलने वाले व्यक्ति को हर समय चिंता रहती है कि उसकी पोल न खुल जाए। चुगली भी स्वास्थ्य की शत्रु है। चुगली करने वाले को सदा यह भय रहता है कि मैंने जिस व्यक्ति के यश पर धब्बा लगाया है, वह मेरी चुगली को जानकर मेरा शत्रु बन जाएगा। ईर्ष्या और प्रतिक्रिया की भावना बच्चे के उठते रक्त को जला डालती है। इसलिए आवश्यक है कि इन दोषों से स्वयं भी बचा जाए और अपने बच्चों को भी बचाया जाए। इसके साथ-साथ अपने मन में उच्च नैतिक विचार भरने चाहिए। प्रसन्नता, क्षमा, उपेक्षा, सत्यवादिता और ईमानदारी द्वारा अपने स्वास्थ्य की रक्षा की जानी चाहिए।

महात्मा आनंद स्वामी ने एक स्थान पर लिखा है कि जिस युवक को स्वस्थ रहने की कामना हो उसे प्रसन्न रहना चाहिए। कठिन-से-कठिन घड़ियों में अपनी प्रसन्नता को त्यागना न चाहिए। चेहरे पर मुस्कराहट सजती रहे। खूब खिलखिलाकर हँसना स्वास्थ्य के लिए बहुत गुणकारी होता है। कुछ भी हो प्रसन्नचित्त रहना स्वस्थ जीवन की निशानी है। संसार में दु:ख-सुख, हर्ष-विषाद, आराम-तकलीफ, संयोग-वियोग लगा ही रहता है। कौन ऐसा है जिसे इन झूलों में झूलने का अवसर न मिला हो लेकिन विपरीत परिस्थितियों में भी प्रसन्नता को हाथ से न जाने देना चाहिए।

स्वास्थ्य हमारी अमूल्य निधि है। स्वास्थ्य को खोकर बच्चा अपने सुख और सौभाग्य को खो बैठता है। इसलिए हर संभव तरीके से इसकी रक्षा करनी चाहिए। केवल खुराक, व्यायाम और स्वच्छता पर ही निर्भर न रहकर महत्तम प्रकृतिप्रदत्त शक्ति, विचार

और कल्पना से भी लाभ उठाना चाहिए। अपने दैनिक जीवन की प्रत्येक क्रिया में विचार की आत्मा समानी चाहिए।

सैर करने निकलें तो यह समझें की शरीर की नाड़ियों में रक्त की गति हो गई है। हरे-भरे खेतों और दूर-दूर तक फैले हुए दृश्यों को देखते हुए आशा रखें कि आँखें स्वस्थ हो रही हैं।

संसार-सागर की यात्रा के लिए हमारा शरीर एक नाव— शरीर के ऊपर हमारा पार उतरना या डूबना, बहुत कुछ निर्भर करता है। जिस तरह छिद्रयुक्त जीर्ण-शीर्ण कमजोर नाव से चंचल, गतिशील, तीव्र संघर्षयुक्त जलधारा को पार करना कठिन है उसी तरह रोगी, निर्बल और असमर्थ शरीर से जीवन-यात्रा भली प्रकार पूरी करना संभव नहीं होता। विजय, सफलता, आनंद और उल्लासमय जीवन बहुत कुछ स्वस्थ एवं बलवान शरीर पर निर्भर करता है। शरीर मनुष्य के लिए एक ऐसी ईश्वरीय देन है जिसके अभाव की पूर्ति संसार में अन्य कोई भी वस्तु नहीं कर सकती।दुर्बल आँख की क्षतिपूर्ति चश्मा लगवाने से नहीं हो सकती। कमजोर एवं खोखले दाँतों के स्थान पर नकली दाँत लग तो जाएँगे परंतु वे प्राकृतिक दाँतों की तुलना कहाँ कर सकते हैं ? केवल मुँह को पोपला लगने से बचाए रख सकने भर की सामर्थ्य उनमें होती है।

एक महात्मा के पास एक गरीब निर्धन व्यक्ति गया। गिड़गिड़ाकर अपनी दीनता की कहानी सुनाते हुए दुःख दूर करने की याचना की। पैरों पर गिरकर करुण कहानी सुनाने लगा कि 'सायंकाल भोजन के लिए भी एक पैसा नहीं है, कोई साधन नहीं कि जिससे कोई रोजगार करके जीविका निर्वाह कर सकूँ ?' महात्मा जी चुपचाप सब सुनते रहे फिर बोले—"तू तो कई हजार का माल अपने पास रखे है फिर मेरे सामने भिखारी बनने का स्वाँग क्यों करता है ?" गरीब बेचारा चौंका और बोला—'महाराज' मैं आपसे असत्य नहीं बोल रहा हूँ, मेरे पास एक फूटी-कौड़ी भी नहीं है।' महात्मा ने

कहा—"अच्छा सुन, तू अपने दोनों हाथ मुझे दे दे और बदले में २ हजार रुपये नकद मुझसे ले ले।" भिखारी बेचारा सोचने लगा, फिर थोड़ी देर बाद बोला, "नहीं, स्वामी जी, दो हजार लेकर मैं अपने हाथ देकर जीवन भर के लिए लूला बनना नहीं चाहता।" तब महात्मा जी ने कहा—"अच्छा"। अपने दोनों पैर ही दो हजार में मेरे हाथ बेच डाल।" गरीब सोच में पड़ गया, थोड़ी देर बाद उसने उत्तर दिया 'नहीं' ! "स्वामीजी, दो हजार रुपये लेकर जीवन भर के लिए पंगु बनना स्वीकार नहीं है।" तब फिर महात्मा बोले, "अच्छा ले चार हजार देता हूँ, अपनी दोनों आँखें दे दे।" भिखारी ने फिर सोचकर इनकार कर दिया। अंधे बनकर जीवन काटना उसने किसी भी प्रकार स्वीकार नहीं किया। इसी प्रकार महात्मा ने अन्य अंगों का मूल्य लगाया, लेकिन किसी पर भी वह भिखारी देने को राजी न हुआ। तब अंत में महात्मा ने कहा, अरे मूर्ख ! तू कई हजार का नहीं, कई लाख, कई करोड़ कीमती सामान रखे रहकर अपने को भिखारी कहता है। यदि तू इन सबका सदुपयोग कर, इनका मूल्य समझ ले तो अपनी गरीबी के साथ सैकड़ों की गरीबी दूर करने की सामर्थ्य तुझ में छिपी है।"

वास्तव में हम अपने शरीर की कीमत नहीं करते। किस अंग विशेष का मूल्य हमें तब मालूम होता है जब वह हमसे छिन जाता है। आँख फूटने के बाद आँख का, दाँत टूटने के बाद दाँत का, बहरे होने पर कान का मूल्य हमें मालूम होता है।

"अब पछताए होत का जब चिड़िया चुग गई खेत।"

बुढ़ापे में अंधे, बहरे और पंगु बनकर रोने से क्या लाभ ? बचपन से चेतें। अपने बच्चे को उसके हर अंग की महत्ता बताओ, उनकी उपयोगिता समझाओ और उनके सामने उन लोगों के उदाहरण रखो जिन्होंने मूर्खता में पड़कर अपने अंगों के साथ खेलवाड़ करके उन्हें नष्ट कर डाला है। कृत्रिम दाँत वाले को दिखाकर आप अपने

बच्चे को दाँत की उपयोगिता बताइए। अंधे को दिखाकर आँखों की उपयोगिता का भान कराइए। हाथ-पाँव से दुर्बल व्यक्ति को दिखाकर इन अंगों को सुरक्षित रखने की तरकीब समझाएँ।

देखकर, सुनकर और समझकर यदि बच्चा काठ का पुतला नहीं है तो अवश्य शिक्षा प्राप्त करेगा। अपने अंगों की सुरक्षा रखने की ओर वह सतर्क रहेगा और फिर उसे दीर्घ काल तक इनके उपयोग का आनंद मिलेगा।

शरीर को दुर्बल न होने दिया जाए—शास्त्रकारों ने शरीर को ही सब धर्मों का साधन बताते हुए कहा है—**"शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्।"** स्वस्थ शरीर के द्वारा ही जीवन और जगत् के धर्म-कर्तव्यों का भार वहन किया जा सकता है। वस्तुतः बिना मजबूत शरीर के न हम किसी का ऋण चुका सकते हैं और न अपना कर्तव्य पूर्ण कर सकते हैं। दुर्बल शरीर से न किसी की सेवा ही हो सकती है। बापू ने कहा है, "शरीर आत्मा के रहने की जगह होने से तीर्थ जैसा पवित्र है।" आवश्यकता इस बात की है कि हम इसे तीर्थ की तरह ही स्वच्छ-सुंदर विकार-शून्य बनाने का प्रयास करें।

शरीर के माध्यम से ही जीवन और जगत् के सौंदर्य-आनंद का लाभ उठाया जा सकता है। शरीर में जब भरपूर उछल-कूद, मन में अपार उत्साह होता है, तो यह संसार क्रीड़ाभूमि सा दीखता है, स्वर्ग-सा लगने लगता है। और जब शरीर असमर्थ, अयोग्य, बलहीन हो जाता है, तो यह संसार नरकतुल्य जान पड़ता है। जीवन भारस्वरूप लगने लगता है। पाश्चात्य विद्वान बीचर ने कहा है—"शरीर वीणा है और आनंद संगीत। यह जरूरी है कि यंत्र दुरुस्त रहे।" आनंद का संगीत स्वस्थ शरीर में ही स्पंदित होता है।

शरीर का रोगी जीर्ण-शीर्ण कमजोर होना अपने आप में एक बहुत बड़ा पाप है। जार्ज बर्नार्डशॉ ने कहा है, "यदि कोई बीमार पड़ेगा तो मैं उसे जेल भेज दूँगा।" बीमारी सजा है प्रकृति के नियमों

का उल्लंघन करने की। रोगी होना अपने आप में अपराधी होना है। रोगी होकर, जहाँ मनुष्य अपने लिए नरकतुल्य जीवन का द्वार खोलता है, वहाँ समाज की उन्नति में भी बाधा डालता है। क्योंकि एक ओर तो वह व्यक्ति समाज के लिए जो कुछ करता है, वह रुक जाता है, दूसरे अन्य लोगों का समय, श्रम, धन रोगी के लिए लगने लगता है।

स्वस्थ बलवान शरीर वाले बच्चे पर फटे कपड़े भी शोभा देते हैं। रोगी और निस्तेज बालक सुंदर कपड़ों के सौंदर्य को भी भद्दा बना देता है। उसे कितना ही सजाएँ, वह अनाकर्षक और कुरूप ही लगेगा।

वैयक्तिक जीवन में शरीर के बाद नंबर आता है हृदय और बुद्धि का। शरीर के साथ-साथ हृदय-बुद्धि का भी अपने-अपने क्षेत्र में स्वस्थ, सतेज होना आवश्यक है। इसी को हम कहते हैं 'विवेक', जिसका साधारण अर्थ यह हो सकता है, कि 'सोच-समझकर काम करने की शक्ति।'

अक्सर देखा जाता है कि कई व्यक्ति शरीर से स्वस्थ होते हैं लेकिन उनके हृदय, बुद्धि अविकसित ही रह जाते हैं। बहुत-से पहलवान कहलाने वाले लोग बुद्धि के 'ठस' और हृदय के प्रेम, आनंद, निर्मलता से शून्य होते हैं। लोगों की प्रायः यह धारणा बन गई है कि जो शरीर से तगड़ा होगा बुद्धि से कमजोर होगा। जो बुद्धिमान होगा उसका शरीर दुर्बल होगा, लेकिन वस्तुतः यह विश्वास गलत है।

अकबर के दरबार में दो हट्टे-कट्टे राजपूत नौकरी के लिए आए। अकबर ने कहा कि अपनी ताकत की परीक्षा दो। दोनों राजपूतों ने अपनी तलवारें एक-दूसरे से मुकाबले के लिए खींच लीं। थोड़ी देर में एक ने दूसरे का सिर काट लिया और दूसरे ने पहले के पेट में तलवार भौंक दी। दोनों की लाश नदी में फेंकवा दी गई। यह भी स्वस्थ शरीर के नमूने थे। लेकिन इनमें विवेक, बुद्धि नहीं थी।

स्वस्थ शरीर की पहचान है कि हृदय में उमंग हो, कुछ कर डालने को जी चाहता हो, लेकिन उसके साथ सोच-समझकर कुछ अच्छा कार्य करने की ओर शारीरिक शक्ति को लगाने की क्षमता भी बच्चे में होनी चाहिए। अन्यथा उसका शरीर अकबर के दरबार वाले क्षत्रियों जैसा हो सकेगा।

कहावत है कि 'जोश के साथ होश भी हो।' बिना होश का जोश दो कौड़ी का होता है। मध्यकालीन इतिहास के पृष्ठ होश रहित जोश के उदाहरणों से भरे पड़े हैं। आल्हा-ऊदल की लड़ाइयाँ होश रहित जोश के नमूने थे। अकारण दूसरे राज्यों से झगड़ा मोल ले बैठते थे। काश, उनकी शक्ति यदि देशसेवा अथवा राज्यसेवा में लगती तो वे कैसे होते ? पृथ्वीराज चौहान के दरबार में उनके एक काका थे, उनके सामने यदि कोई मूँछों पर हाथ फेर दे, तो वे उसे बिना मार डाले न छोड़ते। एक दिन पृथ्वीराज के ससुराल के लोग आए थे। दरबार में भी सभी लोग बैठे थे। अचानक उन्होंने 'मूँछों' पर हाथ फेरा, बस काका की त्योरियाँ चढ़ गई। वे अपने को संभाल न सके और तलवार खींचकर उनका सिर ही काट डाला।

ऐसे स्वस्थ युवक किस काम के, जिनमें जोश हो लेकिन होश न हो। हड़ताल करना, ट्रेनों की जंजीरें खींचना, सरकारी कर्मचारियों को मार-पीट देना, आपस में हाकियाँ चटकाना आदि अनुशासनहीन कार्य ही उनसे बन पड़ेंगे। उठती जवानी का यह समय भारी नियंत्रण चाहता है। शारीरिक शक्ति यदि गलत दिशा की ओर लग गई तो अग्नि दुर्घटना की तरह घर भर का सत्यानाश करके ही छोड़ेगी। अनुचित दिशा में लगी शक्ति सिनेमा, नाच, रंग, फैशनपरस्ती में शरीर को स्वाहा करती है और घर का पैसा उसमें ईंधन बनता है।

इसलिए माँ-बाप का यह कर्तव्य है कि जहाँ वे बच्चे के शरीर को स्वस्थ बनाने के लिए उसके खान-पान, स्वच्छता, मनोरंजन, व्यायाम आदि पर आवश्यकतानुसार ध्यान दें, उसके शरीर को

हृष्ट-पुष्ट बनावें, वहाँ उसके मस्तिष्क को भी परिष्कृत करने, उसमें सोच-समझकर समयानुसार कार्य करने की शक्ति पैदा करें। यह एक आवश्यक कार्य है, जो एक दिन में बड़े प्रयत्न से पूरा नहीं हो सकता। आपको हमेशा कुछ-न-कुछ करना ही पड़ेगा।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण की आवश्यकता—विचार शीघ्र बदले जा सकते हैं लेकिन जीवन का दृष्टिकोण धीरे-धीरे बनता है। उसमें परिवर्तन भी धीरे-धीरे ही हो सकता है। हर व्यक्ति बचपन से ही अपने विषय में सोचता-विचारता रहता है। उस सोचने-विचारने के ढंग के अनुसार अपने तथा समाज के विषय में उसकी एक धारणा बन जाती है। फिर उसके समस्त कार्य उसी 'धारणा' की धुरी से संचालित होते रहते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि बच्चे को शुरू से ही सही दिशा में सोचने और दृष्टिकोण बनाने में सहायता दी जाए।

समाज में अंधविश्वास का बोलबाला है। बहुत-सी मिथ्या बातों का प्रचलन है। रूढ़िवाद, जाति-पाँति, छूआछूत के भेदभाव के नाम पर लाखों लोग अपमान की चक्की में पिसते रहते हैं, तो बहुतेरे ऐसे हैं जो इन मान्यताओं का लाभ उठाकर बिना परिश्रम किए मौज उड़ाते हैं। चूँकि हमारी निश्चित मान्यता बन गई है कि ये बातें सही हैं। इसलिए हम आँख से देखते हुए भी बुरा नहीं कहते, फिर उसमें परिवर्तन की बात कैसे सोचें ?

संसार की बदली हुई परिस्थितियों में हमारी निर्जीव मान्यताएँ भावी पीढ़ी को प्रगति की ओर ले जाने में सहायक नहीं होतीं। जब बच्चा घर पर तो अपनी पुरानी मान्यताओं के अनुसार कार्य करता है और स्कूल में पुस्तकों से उसमें दूसरे अंतर्द्वंद्व उठना स्वाभाविक है। यही अंतर्द्वंद्व, असंतोष, कलह और विचार भिन्नता के समय प्रकट होता है। इसलिए माता-पिता को चाहिए कि बच्चे को हर अच्छी-बुरी मान्यताओं को जैसी-की-तैसी स्वीकार कर लेने के लिए कभी

उत्साहित न करें। जिस प्रकार गणित के नियम सही और खरे हैं, उनके विपरीत चलने से प्रश्न का सही उत्तर नहीं निकल सकता। ठीक उसी प्रकार हमारा धर्म भी वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित है। उसकी हर बात को आँख मूँदकर मनवाने से क्षति ही होगी। अतः जो भी परिस्थिति सामने आए और बच्चा उसे समझने अथवा जानने की चेष्टा करे। आप उसकी वास्तविकता को कभी मत छिपाएँ।

कोई त्योहार क्यों मनाया जाता है ? यह आप बच्चे को समझाइए। जाति प्रथा क्यों प्रचलित हुई ? उससे क्या लाभ थे, यह बच्चे को बताना चाहिए। आज उसकी क्या उपयोगिता है—यह भी बताइए। बदली परिस्थिति में उसमें क्या परिवर्तन लाना चाहिए ? इस पर भी बच्चे को सोचने और सम्मति देने का अवसर दीजिए। विशेष रीति-रिवाज को क्यों मनाया जाता है—इस बारे में भी आप बच्चे को बताइए। बच्चे में विचार शक्ति और तर्क शक्ति जाग्रत् कीजिए। हर काम को करने से पहले उसके परिणाम को सोचने-विचारने के लिए कहना चाहिए। आँख मूँदकर अपनी आज्ञा को मनवाना बुद्धिमान् माँ-बाप का काम नहीं है। यदि, आप बच्चे में हर काम के परिणाम, साधन, उपयोगिता एवं करने के ढंग के विषय में सोचने-विचारने का मौका देंगे और उसे सहायता भी देंगे तो उसमें विवेक-बुद्धि जाग्रत् होगी। वह कभी ऊँची मान्यता की भित्ति से नीचे गिरने का अवसर न आने देगा।

इंग्लैंड का प्रधान मंत्री 'लार्ड डिजरायली' कहा करता था कि मेरे छह महान शिक्षक हैं जिनसे मैंने सब ज्ञान सीखा है। वे शिक्षक कौन हैं ? उसने बताया कि (१) क्यों, (२) कैसे, (३) कब, (४) किस प्रकार, (५) कौन, (६) किसके द्वारा ? यही छह तर्क उसके शिक्षक थे।

हर काम को करने से पहले यही छह प्रश्न आप अपने से पूछिए, उत्तर स्वयं निकल आवेगा। उन्हीं उत्तरों से मार्गदर्शित होकर

आप कार्य करें। यही आदत बच्चों में डालनी चाहिए। यदि उनकी आदत इस प्रकार जानने-बूझने की पड़ जाएगी, तो वे समाज के आदर्श नागरिक बनेंगे।

स्वावलंबन का लक्ष्य—दूसरे, अपने व्यक्तिगत जीवन के विषय में उदारवादी और व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाने की सलाह दीजिए। जैसे युवकों के मन में शुरू से ही यह धारणा बनती रहती है कि पढ़-लिखकर वे नौकरी करेंगे। माँ-बाप भी उनकी इस धारणा को पुष्ट करते रहते हैं। वे बच्चों को बताते रहते हैं कि अगर वह पढ़ लेगा तो कहीं नौकरी मिल जाएगी, ठाठ से घूमेगा, अन्यथा खेती करते-करते घास छीलेगा, हल जोतना पड़ेगा। व्यापारी भी अपने बच्चे को इसी प्रकार की गलत दिशा में सोचने का अवसर देता है। ये बातें बच्चे के हृदय में नौकरी के प्रति ऊँची धारणा और खेती तथा व्यापार के प्रति हीन भावना उत्पन्न कर देती है। परिणाम यह होता है कि पढ़ने-लिखने के बाद बच्चे को जब तक नौकरी न मिले वह घर पर बेकार पड़ा रहना पसंद करेगा परंतु खेती में परिश्रम करना उसे नहीं भाएगा। हम नित्य देखते हैं कि कितने ही युवक इस मिथ्या धारणा के कारण ६०० रुपये मासिक वेतन पर दिनभर कार्यालय की फाइलों से जूझ-जूझकर अपनी प्रतिभा को नष्ट करने में आत्मसंतोष का अनुभव करते हैं लेकिन उससे आधा परिश्रम करके ही अधिक पैसा कमाना अथवा स्वतंत्र एवं स्वावलंबी जीवन बिताना पसंद नहीं करते, इससे बड़ा देश का दुर्भाग्य और क्या हो सकता है ? परिस्थिति यह है कि शिल्प, उद्योग एवं कृषि की ट्रेनिंग करने वाले लोग भी उसी विभाग में नौकरी को ही जीवन का स्वर्ग समझते हैं।

बच्चों की इस मिथ्या-मान्यता को बदलना होगा। उन्हें यह कल्पना देनी है कि स्वावलंबी जीवन बिताकर अपने शरीरबल एवं बुद्धिबल का परीक्षण करके उसके आधार पर जीविका निर्वाह करना

नौकरी से कई गुना श्रेष्ठ है। नौकरी फिर नौकरी ही है चाहे वह कितनी ही बड़ी क्यों न हो !

सोच, समझ एवं उचित परिणामों के आधार पर निश्चय करने का मौका दीजिए। जब बच्चे में विवेक-बुद्धि उत्पन्न हो जाती है, सत्य-असत्य का निर्णय करने की शक्ति उनमें जाग्रत् होने लगती है, तब वह धीरे-धीरे अपनी हर समस्याओं के प्रति एक सही दिशा अपनाने को सोचता है, जिससे उसमें ओजस्विता एवं स्वावलंबन के गुण पैदा होते हैं।

शिक्षा-स्वाध्याय

जो बच्चा स्कूल जाता है, उसका सबसे बड़ा काम क्या है ? वह ज्ञान प्राप्त करने के लिए स्कूल जाता है, मूर्ख बनने के लिए नहीं। फिर उसका काम है कि वह अध्ययनशील बने। यदि उसे पुस्तकों से प्रेम नहीं है, यदि वह पढ़ने को बेगार समझता है, तो अच्छा हो कि उसका नाम विद्यालय से कटाकर किसी घरेलू धंधे में लगा दिया जाए।

माँ-बाप को चाहिए कि वह बच्चे की पढ़ने में रुचि पैदा करें। बातों और चतुरता से कुछ विधियों को अपनाकर रुचि उत्पन्न की जा सकती है। बचपन से ही उन्हें अच्छी पुस्तकें पढ़ने को देना चाहिए। १५-१६ वर्ष की आयु, जिसमें बच्चे का बौद्धिक विकास होने लगता है, घर पर उसके पढ़ने का ढंग देखते रहना चाहिए। बहुतेरे बच्चों से माँ-बाप का यह रवैया होता है कि स्कूल से जब बच्चा पढ़कर लौटता है, तो उसे घर के कामों में लगा देते हैं। जहाँ तक गृहस्थी के कामों में हाथ बँटाने की बात है, वह तो उचित है, लेकिन सायंकाल के बाद जब वह अपनी पुस्तकें लेकर पढ़ने बैठता है तो भी उसे नाना प्रकार के अनावश्यक और व्यर्थ के कामों में फँसाए रहते हैं। उदाहरणार्थ यदि आप अपनी मित्र मंडली के साथ बाहर बैठे हैं, तो

हुक्का बिठाने, पान लाने, कोई सामान उठा लाने अथवा भोजन की तैयारी के बारे में घर में पूछ आने के छोटे-छोटे कामों में बच्चे को पुकारकर दौड़ाया करते हैं, जहाँ पर वह बैठा पढ़ रहा है, उसी स्थान के निकट बैठकर जोर-जोर से बातें करते रहते हैं। उन्हें इस बात का तनिक भी ध्यान नहीं रहता कि बच्चे की पढ़ाई में उनकी बातों से बाधा पड़ती है।

स्कूल की पुस्तकें पढ़ना ही अध्ययनशीलता नहीं है। परीक्षा पास करने हेतु उनका स्वाध्याय तो आवश्यक है ही, अतः उस पर बच्चे को नित्य कई घंटे अवश्य देना चाहिए। लेकिन हर बच्चे को यह भी समझना चाहिए कि यह संसार एक बड़ा विश्वविद्यालय है। पालने से लेकर कब्र तक हम सदा ईश्वर के महान विद्यालय में रहते हैं, जहाँ हर चीज हमें अपना पाठ सिखाने की, अपना महान रहस्य बताने की कोशिश कर रही है।

बच्चे का सबसे पहले करने का काम यह है कि संकल्प किया जाए—दृढ़, जबरदस्त और पक्का संकल्प कि हमें शिक्षित बनना है, हमें अज्ञान के कारण हीन रहकर जीवन नहीं बिताना है। बहुतेरे युवक होते हैं, जिनको पढ़ने का शौक होता है, वे अपने खाली समय को व्यर्थ नहीं गँवाते हैं। ऐसे समय में पढ़ने के लिए जेब में पुस्तक रखने की आदत उनमें रहती है। जो नौजवान नए विचारों को झट पकड़ लेते हैं और जो उत्कृष्ट मस्तिष्कों के साथ बार-बार संपर्क में आते हैं, उनमें प्रायः न केवल व्यक्तिगत आकर्षण पैदा हो जाता है, बल्कि मानसिक शक्ति भी पैदा हो जाती है।

अपनी पंचेंद्रियों में 'आँख' सबसे अधिक सीखने-सिखाने का काम देती है। किसी चीज को ध्यान से देखने की कला सीखकर हर युवक अपने मस्तिष्क को विकसित कर सकता है।

ऐसे एक पिता को भी हम जानते हैं, जो अपने लड़के को, ध्यान से देखने की शक्तियों का विकास करने की शिक्षा देता है। वह

अपने लड़के को कुछ समय के लिए किसी अपरिचित सड़क पर भेज देता है और उसके लौटने पर यह पता लगाने के लिए उससे प्रश्न करता है कि उसने कितनी वस्तुएँ ध्यान से देखीं। वह उसे बड़ी-बड़ी दुकानें, संग्रहालय और अन्य सार्वजनिक स्थान देखने को भेजता है और फिर यह देखता है कि लड़के ने जितनी चीजें देखी हैं, उनमें से कितनी चीजों का नाम और वर्णन वह घर लौटने पर कर सकता है। उस पिता का कहना है कि इस अभ्यास से लड़के को चीजों पर केवल नजर फेंकने की बजाय उन्हें देखने की आदत पड़ती है।

हारवर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर एगासिज के पास, जो एक महान जीवशास्त्री थे, जब कोई नया छात्र आता, तब वे उसे एक मछली दे देते और उससे कहते थे कि आधे या एक घंटे तक इसे अच्छी तरह देखो। जब छात्र यह समझता कि मैंने मछली के बारे में सब कुछ बता दिया है, तब प्रोफेसर उससे कहता है—"वास्तव में तुमने अभी मछली को देखा नहीं। इसे थोड़ी देर और अच्छी तरह देखो तथा बताओ कि तुमने क्या देखा ?" वह कई बार यही चीज दोहराता और अंत में छात्र में ध्यान से देखने की शक्ति पैदा हो जाती।

यदि हम जीवन में सावधान जिज्ञासु मन लेकर हर चीज को देखते चलें और अपने बच्चों में इसी प्रकार की आदत डालें तो हम बड़ी भारी मानसिक दौलत तथा सारे भौतिक धन से अधिक बड़ी समझदारी जमा कर सकते हैं।

चिड़ियाँ, कीड़े, पशु, पेड़, नदी, पहाड़, सूर्यास्त और प्रातःकाल की लाली, प्राकृतिक दृश्य आदि सब कुछ अपनी मूक भाषा में सबको शिक्षा देते रहते हैं। जो इनसे कुछ ग्रहण करने की आदत डाल लेता है, उसे चलते-फिरते, उठते-बैठते, शिक्षा प्राप्त होती रहती है। जवाहरलाल नेहरू ने जो पत्र जेल से अपनी पुत्री 'इंदिरा' के नाम लिखे थे, उनमें उन्होंने इसी तथ्य को दर्शाया था। यदि बच्चा नदी,

पहाड़ों, प्राकृतिक दृश्यों को पढ़ना सीख जाए तो वह कितना विशाल ज्ञानार्जन कर सकता है, इसकी थाह नहीं लगाई जा सकती।

दूसरों से सब तरह की जानकारी ग्रहण कर लेने की आदत बड़ी मूल्यवान है। मनुष्य उतना ही दुर्बल और प्रभावहीन होता है जितना वह अपने आपको अन्य मनुष्यों से अलग रखता है। जो लोग एक-दूसरे के संपर्क में आते हैं, उनमें जिज्ञासु मस्तिष्क होने पर शक्ति का एक निरंतर प्रवाह चलता है, इधर-से-उधर बहते हुए बलों की यह धारा बहती है। हम सब लोग जब आपस में मिलते हैं, तब निरंतर लेते-देते हैं। आज की दुनिया में सफलता पाने वाले को अपने चारों ओर से संपर्क रखना चाहिए।

शिक्षा का अर्थ यह है कि ज्ञान को अपने अंदर ग्रहण कर लिया गया है और वह विद्यार्थी का हिस्सा बन गया है। मनुष्य की दक्षता और सफलता की माप इस बात से होती है कि उसने अपने भीतर मौजूद शक्ति को व्यक्त करने की और अपने ज्ञान को प्रकट करने की कितनी योग्यता है ?

बुद्धि उन लोगों के लिए अपना दरवाजा नहीं खोलती जो आत्मत्याग और कठोर परिश्रम रूपी कीमत नहीं चुकाना चाहते। उसके रत्नाभूषण इतने अधिक कीमती हैं कि उन्हें निकम्मे आकांक्षाशून्य लोगों के आगे नहीं बिखेरा जा सकता। हर दशा में अपने आप को अज्ञान से मुक्त करने का दृढ़ संकल्प पैदा कर देना ही बच्चे को अध्ययनशीलता की ओर बढ़ाने में पहला कदम है।

नेपोलियन ने कहा था "ईश्वर सदा सबसे अधिक ताकतवर फौज के पक्ष में रहता है।" वह सदा उनके पक्ष में रहता है जो सबसे अधिक तैयार, सबसे अधिक कुशल, सबसे अधिक चौकन्ने, सबसे अधिक साहसी और दृढ़ निश्चयी होते हैं। यदि हम अधिकतर उन लोगों के जीवन की जाँच करें जो भाग्यवान कहलाते हैं, तो हम देखेंगे कि उनकी सफलता की जड़ें बहुत पीछे अतीतकाल में हैं। शायद हम

इस नतीजे पर पहुँचेंगे कि भाग्यवान आदमी भाग्यहीन आदमी की अपेक्षा अधिक बारीकी से सोचता है और उसकी निर्णय बुद्धि अधिक परिष्कृत है, उसमें अधिक शृंखला और व्यवस्था है, वह अधिक व्यावहारिक है। जीवन भाग्य का खेल है। विधाता ने हमें ऐसी जगह नहीं रख दिया है, जहाँ हम परिस्थितियों के खिलौने होंगे।

बच्चे को समाज का सफल नागरिक बनाने के लिए उसमें सदैव सतर्क रहने की आदत डालिए। यह संसार एक युद्धभूमि है। हर व्यक्ति यहाँ का एक सैनिक है। सैनिक को युद्ध में हर समय सतर्कता एवं जागरूकता की आवश्यकता होती है। उसके किंचित् मात्र असावधान होने से असफलता का मुँह देखने को मिलता है।

कुछ प्राप्त करने के लिए सदैव जाग्रत् रहना पड़ेगा। असावधान रहना काहिल और आलसी, कामचोर और निठल्ले बैठकर बाकी जमा की हुई पूँजी से मौज उड़ाने वाले अधिक दिन तक अपना धंधा चालू नहीं रख सकते। अंत में सब कुछ खो जाने के बाद हाथ मल-मलकर पछताना पड़ता है।

अतः माता-पिता को चाहिए कि अपने बच्चों को सतर्क बनाएँ, सावधान, जागरूक रखें, चैतन्य रखें। ऐसा वे स्वयं सतर्क रहकर ही कर सकते हैं। असावधान व्यक्ति भला दूसरे को सावधानी की शिक्षा कैसे दे सकता है ?

पुरुषार्थ और परिश्रम

पिछले अध्याय में यह बताया गया है कि युग के अनुसार 'मान्यताएँ एवं धारणाएँ' परिवर्तित होती रहती हैं। कालचक्र हर अच्छे-बुरे को फलने-फूलने का अवसर देता रहता है। आज से कई वर्ष पूर्व परमहंस बाबा राघवदास जी भूदान-पदयात्रा में हमारे जनपद में आए थे। अपने प्रवचन में उन्होंने भी इस मत का प्रतिपादन करते हुए कहा कि 'प्राचीन काल में वह व्यक्ति समाज का आदर्श माना

जाता था जो धनुर्विद्या में सर्वश्रेष्ठ होता था। मध्यकाल में तलवार का धनी व्यक्ति श्रेष्ठ माना जाता रहा। अँग्रेजी शासन काल में हमारी मान्यता ने फिर करवट ली। न तो धनुर्धारियों की महिमा रह गई और न तलवारधारियों की, वरन् जो भाषण देने की कला में प्रवीण हो, वह श्रेष्ठ माना जाने लगा। दूसरे इस काल में बाबूगिरी को प्रोत्साहन मिला। समाज का बड़ा आदमी वह बना जो अपने हाथों से कोई काम न करे। जिसके यहाँ कोई खिदमतगार सेवा के लिए लगा हो, जो अपने हाथ से एक तिनका भी न छुए। इस मर्यादा ने सब पर अपना प्रभाव डाला। बच्चों का पालन-पोषण भी इसी दृष्टि से होने लगा, वे अधिक-से-अधिक नाजुक बदन बनाए जाने लगे। अक्षरज्ञान में प्रवीणता की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा और रचनात्मक प्रतिभा अथवा काम-काज करने की ओर कम। खेती, वाणिज्य, व्यवसाय आदि पेशे निम्नकोटि के माने जाने लगे। इनको करने वाले, छोटे किसानों और व्यापारी संसाधन पेशा वालों के सामने नीचे माने जाने लगे। लेकिन युग बदलता रहता है। मान्यताएँ बदलती रहती हैं, एक के गर्भ से दूसरे का जन्म होता रहता है। स्वतंत्र भारत के साथ कुछ नई मान्यताएँ बनीं। अब 'श्रम और सेवा' का युग आया है। जो व्यक्ति अपने हाथों से अधिक-से-अधिक काम करता है, वह समाज में आदर्श पुरुष माना जाने लगा है और जिसने समाज की सेवा में अपने व्यक्तिगत सुख और संपन्नता का परित्याग किया, उन्हें समाज ने श्रेष्ठता की उपाधि से विभूषित किया।

अधिक बोलने वालों की महिमा अब धीरे-धीरे कम हो रही है। जनता यह स्वीकार करने लग गई है कि वे केवल 'वाचाल' हैं। नित्यप्रति देखते हैं कि जिस प्रकार आज से दस वर्ष पूर्व नेताओं की मीटिंगों में भीड़ इकट्ठी होती रहती थी, अब नहीं होती। बड़े-बड़े नेता आते हैं परंतु जनता में कोई उत्साह नहीं होता। लोग मीटिंगों और सभाओं से ऊब गए हैं। अब उन लोगों की प्रतिष्ठा बढ़ने लगी

है जो रचनात्मक प्रतिभा अपने में रखते हैं और जनसाधारण की सच्ची सेवा करके उनके स्तर को उठाने की ओर कार्यरत हैं। वह समय लद गया, जब काम न करने वाले और दूसरों पर अधिकाधिक आश्रित रहने वाले ऊँचे माने जाते थे। ऐसे राजाओं, महाराजाओं के लड़के अब बाजारों में इधर-उधर घूमा करते हैं, कोई उन्हें आदर की दृष्टि से नहीं देखता। अब युग आया है कि अपने हाथों काम करने वाले और स्वावलंबी जीवन बिताने वाले समाज के श्रेष्ठ पुरुष माने जाते हैं। यह निश्चित है कि स्वतंत्र भारत के विकास के साथ इस मान्यता की अधिकाधिक पुष्टि होगी।

घर का धंधा भी देखें—बच्चों को इसी मान्यता के अनुसार ढालने की जरूरत है। इसके लिए सबसे बड़ा काम यह है कि शुरू से ही बच्चों में काम करने की आदत डालें। जिसके यहाँ जो पेशा होता हो, अपने बच्चों को उसमें लगाने की चेष्टा करनी चाहिए। १४-१५ वर्ष का बच्चा इस योग्य होता है कि माँ-बाप के काम में कुछ हाथ बँटा सके। मेरे यहाँ एक अच्छे कृषक पांडे जी का बच्चा पढ़ता है। जब भी हमें उनके घर जाने का अवसर मिला, हमने यही देखा कि कहीं वह लड़का भैंस बाँध रहा है, कहीं बैलों को चारा दे रहा है तो कहीं खेत में सिंचाई कर रहा है। पढ़ाई के समय के बाद नित्य सवेरे-शाम वह अपने गृहस्थी के कामों में हाथ बँटाता है। उसकी यह आदत हमें बहुत अच्छी लगी। इसके विपरीत ऐसे भी युवक मिले हैं, जिनके माँ-बाप आर्थिक दृष्टि से अधिक संपन्न नहीं हैं, बेचारे शाम तक कड़ी मेहनत करके अपनी जीविका चलाते हैं, पेट काटकर किसी प्रकार बच्चे को ऊँची शिक्षा दिलवाने में प्रयत्नशील हैं लेकिन उनके बच्चे के मन में यह धारणा बैठ गई है कि अब तो वह बी० ए० में पहुँच गया। बड़ा आदमी बन गया है। अपने हाथों काम करने में उसके मित्र उसकी हँसी उड़ाएँगे। इसी मिथ्या धारणा में वे छुट्टियों के दिन घर पर पड़े-पड़े सोया करेंगे, या गाँव में

इधर-उधर मटरगस्ती में अपना समय काट डालेंगे। उनकी आँखों के सामने ही घर के अन्य लोग बेचारे मेहनत करते रहेंगे लेकिन वे उनके कामों में तनिक भी हिस्सा बँटाने की इच्छा प्रकट न करेंगे। उनके इस दोष के कारण घर वाले भी उन्हें सम्मान अथवा प्यार की दृष्टि से नहीं देखते, गाँव के भी सभ्य लोग इस बात को अच्छा नहीं समझते। इसलिए माँ-बाप को बचपन से ही इस ओर ध्यान देना चाहिए। पढ़ाई कोई कोल्हू के बैल जैसी तो है नहीं कि उससे छूटने के बाद बैल से कोई काम न लिया जाए। सरकार भी अब इस ओर अधिक ध्यान दे रही है। स्कूलों में प्रसार योजनाएँ चालू की गई हैं। कुछ-न-कुछ कृषि की शिक्षा हर स्कूलों के साथ इसीलिए लगाई गई है, ताकि भारत का मुख्य पेशा कृषि की ओर बच्चों का ध्यान आकर्षित किया जाए। अब तरह-तरह के उद्योग खोलकर बच्चों को उसमें लगाया जाता है। गांधी जी के बेसिक शिक्षा के सिद्धांत 'कर्म द्वारा शिक्षा' को सबने सही स्वीकार किया है और उसके अनुसार स्कूलों में थोड़ा-बहुत परिवर्तन हुआ भी है।

(१) सरकारी प्रयास तभी कुछ सफलीभूत हो सकता है जब अभिभावकों का पूरा-पूरा सहयोग उसे मिले और अभिभावकों का सबसे बड़ा सहयोग यह है कि बच्चों को अपने व्यवसाय एवं गृहस्थी के कामों में अवश्य लगावें। स्कूल से सवेरे-शाम मिलाकर चार-पाँच घंटे का समय मिलता है, इसमें से बच्चों के विश्राम एवं मनोरंजन व खेलकूद के लिए भी समय दिया जाना चाहिए लेकिन कम-से-कम एक-दो घंटा तो नित्य उन्हें कृषि, गो-सेवा, दूकानदारी अथवा कला-कौशल के कामों में लगाना ही चाहिए। इस बात की सतर्कता माँ-बाप अवश्य बरतें कि उनके निर्बल कंधों पर कोई भारी बोझ न डाल दें। जैसे—कृषक अपने बच्चों से बोझ ढोने अथवा सिर के ऊपर कोई वजनदार चीज लाने-ले जाने का काम न सौंपे। सिर पर बोझा ढोने का प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ता है, जिससे उसका विकास

अवरुद्ध होता है और परिणामतः बच्चा मंदबुद्धि हो जाता है। दूसरे भारी काम करने से बच्चे की रुचि भी उस ओर से हटने लगती है।

(२) बच्चों में अपने पैतृक पेशे के प्रति रुचि भी पैदा करनी चाहिए। बच्चों को ही तो थोड़े समय बाद अपने पिता की सारी जिम्मेदारी सँभालनी है। यदि वह प्रारंभ से उसमें रुचि नहीं लेता और ठीक प्रकार की जानकारी नहीं रखता तो थोड़े समय बाद सहसा पिता की मृत्यु अथवा किसी अन्य कारण से अचानक कोई संकट आने पर हाथ-पाँव ढीले हो जाते हैं। वह हताश हो जाता है और कुछ कर नहीं पाता। इसलिए पिता को चाहिए कि वह अपने बच्चे को सब कुछ सिखाता जाए। कृषक के लड़के को पिता के साथ खेतों को देखने जाना चाहिए, पैदावार की जानकारी रखनी चाहिए। अपने गाय, बैल, भैंसों आदि की संख्या तथा उनकी अच्छाई-बुराई को समझना चाहिए। तात्पर्य यह है कि गृहस्थी के दिन-प्रतिदिन के समस्त कामों का साधारण ज्ञान बच्चे को धीरे-धीरे अवश्य करा देना चाहिए, ताकि वह भावी जिम्मेदारी को सँभालने के लिए सक्षम बन सके।

(३) धन और परिवार की आर्थिक परिस्थिति कितनी भी अच्छी क्यों न हो और घर में चाहे कई नौकर काम के लिए लगे हों, पुत्र इकलौता होने के कारण बड़ा दुलारा हो, लेकिन समझदार माता-पिता को यही चाहिए कि बच्चे को अपने निज के सब काम करने को प्रोत्साहित करें। जैसे स्नान के बाद धोती धोने का काम नौकर को नहीं, बच्चे को स्वयं करना चाहिए। हाथ-मुँह धोने तथा नहाने के लिए पानी नल अथवा कुँए से उसे स्वयं निकालना चाहिए। अपना बिस्तर स्वयं बिछाना चाहिए। अपने छोटे-छोटे काम बच्चे को स्वयं करते रहने की आदत पड़े। इससे उनमें स्वावलंबन की भावना आती है, बच्चा परमुखापेक्षी नहीं होता। आगे चलकर आज की यह छोटी आदतें उसके बड़े काम की सिद्ध होती हैं। जो माता-पिता दुलार की

अधिकता के कारण बच्चे को तो कुछ नहीं करने देते और स्वयं उसके सब कामों को करके उसके प्रति स्नेह-भाव का प्रदर्शन करते हैं, वे स्वयं जानबूझकर बच्चे के पैर में कुल्हाड़ी मारते हैं। उसके भावी जीवन को सुख और शांतिमय बनाने के लिए उसे स्वावलंबी बनना आवश्यक होता है।

(४) बच्चे के दृष्टिकोण को बदलना चाहिए ? श्रम के प्रति जो उपेक्षा भाव आज व्याप्त है, लोग उसे नीची निगाह से देखते हैं, यह हीन भावना बदलनी चाहिए। अपने बड़प्पन की कसौटी अब काहिली नहीं 'कर्मठता' होनी चाहिए। जो आदमी बड़ा काहिल, अपने हाथों अपना कोई भी कार्य कर सकने में असमर्थ है, वह बड़ा नहीं, वरन् दो कौड़ी का है, यह विचार अच्छी तरह बच्चे के हृदय में बिठा देने चाहिए। चलते समय, अपने छोटे-छोटे सामान अपने हाथों उठा ले जाने में युवकों को शर्म और संकोच करने की अब जरूरत नहीं है और न उनकी प्रतिष्ठा पर किसी प्रकार की आँच आती है।

ईश्वरचंद्र विद्यासागर के जीवन से आज के युवकों को शिक्षा लेनी चाहिए। वे विद्या के सागर थे, मगर सदैव साधारण वेशभूषा में रहना उन्हें प्रिय था। प्रथम साक्षात्कार में देखने मात्र से उनकी योग्यता एवं महानता का परिचय लगाना कठिन था। वे एक दिन ट्रेन से किसी बड़े शहर को जा रहे थे। जब गाड़ी रुकने पर वे वहाँ उतरे तो क्या देखा कि एक युवक भी उसी गाड़ी से उतरा है, उसके पास एक अटैची है जिसे स्टेशन से थोड़ी दूर आगे तक ले जाने के लिए वह कुली की खोज कर रहा है। युवक द्वारा थोड़ी दूर तक प्लेटफार्म पर जोर-जोर से पुकारने पर भी कोई कुली न मिल सका। युवक बेचारा बड़ा निराश-सा लगने लगा था। इतने में ईश्वरचंद्र जी उसके सामने आए और उसकी अटैची उठाकर अपने कंधों पर रखकर युवक से चलने का संकेत किया। युवक ने समझा कोई कुली होगा।

वह आगे-आगे चलने लगा और पीछे-पीछे अटैची लिए हुए विद्यासागर जी। जब युवक अपने गंतव्य स्थान पर पहुँचा तो अटैची उतरवा ली और वह विद्यासागर जी को पैसे देने लगा, लेकिन उन्होंने न लिए। दूसरे दिन उसी शहर में विद्यासागर जी का भाषण होने वाला था। ईश्वरचंद्र विद्यासागर जी के नाम तथा योग्यता से सभी पढ़ा-लिखा समुदाय परिचित था। वह युवक भी उनके भाषण को सुनने के लिए गया। अपार भीड़ थी उनके दर्शनों के लिए। जब विद्यासागर जी मंच पर आए, तो जहाँ हजारों ने उन्हें देखकर करतल ध्वनि की, उस युवक बेचारे के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने देखा कि यह तो वही कुली है, जो कल मेरी अटैची लाया था। शर्म के मारे वह बेचारा धरती में गड़ गया। जब सभा समाप्त हुई तो वह अपने हृदय की भारी वेदना लिए हुए जाकर विद्यासागर जी के चरणों पर गिर गया। विद्यासागर जी ने पहचानकर उसे गले लगाया और कहा, "बेटा, तुम राष्ट्र के भावी कर्णधार हो, तुम्हारे ऊपर ही देश की भारी जिम्मेदारियाँ आने वाली हैं। यदि तुम अटैची का हलका बोझ अपने कंधों पर नहीं उठा सकते तो देश की भावी जिम्मेदारियों का बोझ कैसे उठा सकोगे ?" युवक ने सब कुछ समझ लिया। उस दिन से उसने अपना सारा काम स्वयं करने का संकल्प किया, जिससे उसकी योग्यता तथा प्रतिभा में भी निखार आया।

आज के युवकों को भी विद्यासागर जी के आदर्श से प्रेरणा लेनी है। आज दासता वाला युग लद गया। एक समय था, जब हम अपनी सारी कठिनाइयों के लिए अँग्रेज सरकार का मुँह ताका करते थे। उसे ही दोष भी दिया करते थे। अब तो देश स्वतंत्र है, हम अपने भाग्य के निर्माता स्वयं हैं। अपनी सारी परेशानियों, कष्टों, अभावों को स्वयं ही तो दूर करना है। अपने ही पैरों पर खड़ा होने से अपनी मंजिल तय होगी। अपने ही हाथों से करने से अपने कार्य पूरे होंगे, अपने ही सोचने और समझने से बुद्धिमानी का मार्ग प्रशस्त होगा,

फिर क्यों न भावी भारत की सुंदर कल्पना के लिए हम अपने युवकों को उस दिशा में समुचित प्रेरणा दें।

शौर्य और धैर्य

दैवी संपत्तियों में से सबसे पहला गुण है 'साहस'। साहस मनुष्य का सबसे बड़ा संबल है। साहसी व्यक्ति अंधकार में भी अपना मार्ग ढूँढ़ लेता है। कोई उसे अपने पथ से डिगा नहीं सकता।

एक राजा था जिसके ऊपर शत्रुओं के निरंतर आक्रमण हो रहे थे। उसे छह बार पराजय का मुँह देखना पड़ा था। अंत में वह निराश होकर अपनी जान बचाने के लिए भागकर जंगल में एक कुँए में छिप गया। वहाँ उसने देखा कि एक मकड़ी अपना जाला बुन रही है लेकिन बार-बार उसका जाला एक दूसरा कीड़ा तोड़ देता है, लेकिन मकड़ी ने हिम्मत न हारी। एक बार बुनने पर उसका जाला जैसे टूटता कि वह बिना बिलंब किए फिर बुनना प्रारंभ कर देती। अंत में वह जाला बुनने में सफल हो गई। राजा छिपे-छिपे यह देखता रहा उसके मन में भी आवाज उठी कि यदि मकड़ी कई पराजय के बाद अपने उद्देश्य में सफल हो सकती है तो क्या मैं सफल नहीं हो सकता ? राजा कुँए से निकला और जाकर अपनी बची-खुची सेना इकट्ठी की। अंत में सातवीं बार उसे विजयश्री मिल ही गई।

जिस मनुष्य में साहस नहीं उसे हम कायर कहकर संबोधित करते हैं। 'कायर' किसी काम का नहीं, साहसी एक अमूल्य रत्न के समान है। उसके लिए संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं। सरलतापूर्वक जीवन-यापन के लिए साहस रूपी रत्न का धनी होना परमावश्यक है।

जगद् विख्यात वीर नैपोलियन तो साहस का प्रतीक था। बड़ी-से-बड़ी मुसीबत आ जाने पर वह कभी घबड़ाता नहीं था। एक

बार अपनी सेना की छोटी टुकड़ी लिए अंधकारपूर्ण रात्रि में आक्रमण करने जा रहा था। मार्ग में एक छोटा पुल था लेकिन दुश्मनों ने उसे तोड़ दिया। पुल को टूटा हुआ देखकर सेना हिचकिचाई। नीचे जमीन दलदली थी। नेपोलियन ने एक मिनट भी सोचने में न लगाया, तुरंत नीचे कूदा और दलदल में आगे-आगे चलने लगा। अपनी सेना को संबोधित कर कहा, "आओ जवानों ! तुम्हारा नायक आगे-आगे चल रहा है, सेना भी कूद पड़ी और थोड़ी देर में पूरी सेना उस दलदल के पार खड़ी थी।"

उसके साहस की अनेक कहानियाँ प्रसिद्ध हैं कि जब उसने अपने साहस से पराजय को विजय में बदल दिया। अंधकार में प्रकाश खोज लिया।

अपने अंतिम दिनों में जब उसे पराजित करके 'सेंट हेलीना' नामक टापू में बंदी बना दिया गया था, तब उसने अपने साहस का अपूर्व परिचय दिया। उसके चारों ओर कड़ा पहरा था। रात्रि में घोर तूफान आया, वर्षा होने लगी कि पहरे के सारे सैनिक इधर-उधर आत्मरक्षा के लिए छिप गए। नैपोलियन चुपके से निकलकर उसी अँधियारे में फ्रांस की ओर माल ले जाने वाले जहाज में पीछे छिप गया। इधर तूफान निकलते ही उसकी कड़ी खोज होने लगी। परंतु वह तो फ्रांस पहुँच चुका था। जहाज के किनारे लगते ही वह उतरकर चुपके से जंगलों में घुस गया। जब सवेरा हुआ सारे फ्रांस में नेपोलियन के भाग जाने का समाचार फैल चुका था। सेना सतर्क कर दी गई थी। लेकिन नेपोलियन भी तो विचित्र धातु का बना था। दिन निकलते ही पेरिस को जाने वाली सड़क पर अकेले ही चल पड़ा। मार्ग में लोग उसे मिलते-देखते मगर साहस की अपूर्व झलक का परिचय देने वाली आँखों के सामने उनका विरोध समाप्त हो जाता। दौड़कर नैपोलियन के पीछे हो जाते। यों पेरिस के किनारे तक पहुँचते-पहुँचते उसके पीछे कई हजार लोगों की भीड़ चलने लगी।

जब वह पेरिस के निकट पहुँचा तो सम्राट की सेना नैपोलियन का मुकाबला करने को खड़ी थी। वीर वेश में मार्च करता हुआ नैपोलियन आगे बढ़ रहा था। जैसे ही सेना के निकट पहुँचा तो कड़ककर कहा 'वीरों मैं आ गया, मेरा आदेश है कि तुम पेरिस के राज्यसिंहासन पर अधिकार करो।' यह वही सेना थी जिसने वर्षों तक नैपोलियन का आदेश माना था। सबकी नसों में बिजली-सी कौंधी। नैपोलियन की वाणी सुनते ही वह सेना पेरिस की ओर घूम गई। थोड़ी देर में नैपोलियन पुनः पेरिस के राज्य सिंहासन पर विराजमान दिखाई पड़ा। केवल साहस ने यह परिवर्तन कर दिखाया।

प्रथम महायुद्ध में हिटलर जर्मनी के सम्राट विलियम कैसर का एक साधारण सैनिक मात्र था। घमासान युद्ध हो रहा था। मोर्चे पर अचानक हिटलर अकेला पड़ गया था कि उसे शत्रुओं की एक टुकड़ी का उधर से आना सुनाई पड़ा। हिटलर को विश्वास हो गया कि तनिक भी हिचकिचाने से वह बंदी बना लिया जाएगा, इस समय भी उसने साहस नहीं छोड़ा। एक तरकीब सोची और तुरंत बड़ी जोर-जोर से 'लैफ्ट-राइट' 'लैफ्ट-राइट' 'अबाउट टर्न' के आदेश देने लगा। स्वयं ही अपने बूटों की आवाज करता और तेज आवाज में आदेश बोलते हुए आगे बढ़ने का प्रदर्शन कर रहा था। हिटलर की आवाज जब शत्रु सेना के कान में पड़ी तो उसे अनुमान हुआ कि कोई बड़ी टुकड़ी इधर ही आ रही है। हवलदार ने अपनी टुकड़ी को तुरंत मुड़ने का आदेश दिया और दूसरी ओर तेजी से चला गया। हिटलर अपनी बुद्धि-चतुराई और साहस के सहारे बच गया। आगे यही सैनिक जर्मनी का भाग्यनिर्माता तानाशाह बना। भले ही उसे पराजय मिली हो लेकिन उसके एक अद्वितीय वीर होने में कोई संदेह नहीं कर सकता।

साहस के सामने हिंसक पशु भी नतमस्तक हो जाते हैं। मनुष्य में जब कायरता उत्पन्न होती है तभी बाह्य शक्तियाँ उस पर आक्रमण

कर सकती हैं। स्वामी दयानंद सरस्वती जब हिमालय पर तप कर रहे थे तो एक दिन सहसा उन्हें एक शेर बिलकुल निकट ही दिखाई पड़ा। शेर को देखकर दयानंद जी ने अपना साहस न छोड़ा। उसकी ओर आँखें किए हुए अचल भाव से खड़े रहे। थोड़ी देर तक तो शेर इनकी ओर खड़ा ताकता रहा, तत्पश्चात् हारकर जंगल में चला गया। यदि स्वामी जी भयभीत हो जाते तो निश्चय ही शेर उन पर आक्रमण कर देता।

साहस को धर्म का पहला लक्षण माना गया है। गीता ने इसे दैवी संपत्ति के रूप में प्रथम स्थान दिया है। तुलसीदास जी ने धर्म चक्र को पहिया माना है। गाड़ी पहिये के सहारे चलती है। इस प्रकार व्यक्ति साहस रूपी धुरी पर टिककर संसार में अपने सभी कामों को संपादित करता है।

देश के उत्थान और पतन में साहस को विशेष महत्त्व देते हैं। जब तक देश के नागरिकों में शौर्य रहा विदेशी शक्तियाँ कुछ भी बिगाड़ न सकीं। बर्बर जातियों के आक्रमण हुए उन सब चोटों को वीरतापूर्वक सहन किया। गुप्तवंशीय सम्राट स्कंदगुप्त की कहानी हमें मालूम है। सीमा पर मंगोलों के आक्रमण हो रहे थे। इस साहसी युवक ने प्रतिज्ञा कर ली कि जब तक मंगोलों से देश की रक्षा नहीं कर लूँगा भूमि-शयन करूँगा, और विवाह न करूँगा। अंत में सफल भी हुआ।

शिवाजी के पास क्या था ? औरंगजेब जैसे प्रतापी मुगल सम्राट से मोर्चा लेने के लिए उनके पास न तो सेना ही थी और न युद्ध सामग्री। मगर था उसका साहस। उसी साहस ने शिवाजी को सदैव विजय दिलाई। मरहठों में जान फूँक देने का काम वे साहस के बल पर ही कर सके।

वीर छत्रसाल की माँ का नाम 'रानी सारंधा' था। वह भी साहस और स्वाभिमान की पुतली थी, तभी तो छत्रसाल जैसे पुत्र को जन्म दे सकी।

शाहजहाँ का जमाना था। सारंधा के भाई बुंदेला सरदार अनिरुद्ध सिंह के पास घुड़सवारों और पियादों का एक छोटा-सा मगर सजीव दल था। इसी से वह अपने कुल और मर्यादा की रक्षा करता रहता था। श्री प्रेमचंद जी अपनी कहानी में लिखते हैं कि "उसे कभी चैन से बैठना नसीब न होता था। तीन वर्ष पहले उसका विवाह शीतलादेवी से हुआ, मगर अनिरुद्ध विवाह के दिन और विलास की रात पहाड़ों पर काटता था और शीतला उसके जान की खैर मनाने में। अनिरुद्ध लड़ाई में था। अँधेरी रात में शीतलादेवी पलंग पर पड़ी, करवटें, बदल रही थी और उसकी नंद सारंधा फर्श पर बैठी हुई थी।"

इतने में द्वार खुला और एक गठे बदन के रूपवान पुरुष ने भीतर प्रवेश किया। यह अनिरुद्ध था। उसके कपड़े भीगे थे और बदन पर कोई हथियार न था। सारंधा ने पूछा—

'भैया, यह कपड़े भीगे क्यों हैं ?

अनिरुद्ध—नदी तैर कर आया हूँ।

सारंधा—हथियार क्या हुए ?

अनिरुद्ध—छिन गए।

सारंधा—और साथ के आदमी ?

अनिरुद्ध—सब ने वीरगति पाई।

शीतला ने दबी जवान से कहा, "ईश्वर ने ही रक्षा की है। मगर सारंधा के तेवरों पर बल पड़ गए और मुखमंडल गर्व से सतेज हो गया। बोली, "भैया ! तुमने कुल की मर्यादा खो दी। ऐसा कभी न हुआ था।"

सारंधा भाई पर जान देती थी। उसके मुँह से यह धिक्कार सुनकर अनिरुद्ध लज्जा और खेद से विकल हो गया। वह वीराग्नि जिसे क्षण भर के लिए अनुराग ने दबा दिया था, फिर से ज्वलंत हो गई। वह उलटे पाँव लौटा और यह कहकर बाहर चला गया कि "सारंधा ! तुमने मुझे सदैव के लिए सचेत कर दिया। ये बातें मुझे कभी न भूलेंगी।"

अनिरुद्ध किले से बाहर निकला। पल भर में नदी के उस पार जा पहुँचा और फिर अंधकार में लुप्त हो गया।

इस घटना के तीन महीने पीछे अनिरुद्ध मसरौना को विजय करके लौटा। सारंधा के साहसपूर्ण वाक्यों ने उसकी पराजय को विजय में बदल दिया।

यही नहीं, खेती-बारी, व्यापार, नौकरी सबमें साहस की आवश्यकता है। अर्थशास्त्र में किसी उद्योग को सफल बनाने के लिए पाँच आवश्यक तत्त्व बताए गए हैं। (१) पूंजी, (२) भूमि, (३) श्रम, (४) व्यवस्था और (५) साहस। साहस के बिना ये चारों बेकार हो सकते हैं। वही व्यापारी सफल हो सकता है जिसने साहस का परिचय दिया। साहसी मारवाड़ी सुदूर प्रदेशों में पहुँच-पहुँचकर अपने व्यापार को जमाने में सफल हुए। साहसी अँग्रेज व्यापारियों ने संसार भर में दूर-दूर तक अपना झंडा फहरा दिया। मुट्ठी भर अँग्रेज आधे भूमंडल के स्वामी बन बैठे।

१४-१५ वर्ष के बच्चों की अवस्था गुणों के बीजारोपण की अनुकूल अवस्था है। इसलिए इस आयु में हर संभव उपायों से आप उनमें साहसरूपी संपत्ति दान करिए।

बच्चों में साहस भाव को कैसे जागृत किया जाए ?—कुछ निश्चित नियमों को अपनाकर बच्चों में शौर्य भाव जाग्रत् किया जा सकता है। जैसे—

(१) बच्चों को कहानी बहुत प्रिय लगती हैं। माता-पिता साहसी वीरों की कहानियाँ सुनाकर उनमें साहस के भाव जगा सकते हैं। रात्रि में सोने से पूर्व उन्हें वीरों की गौरव-गाथाएँ सुनानी चाहिए।

(२) बच्चे के व्यक्तित्व का आदर करना बहुत आवश्यक है। थोड़ी-थोड़ी भूलों पर उसे बहुत ज्यादा डाँट-फटकार बताने से अथवा बुरी तरह पीटने से बच्चों का शौर्य भाव दब जाता है। वे कायर, डरपोक और दब्बू बन जाते हैं। बच्चे को आदर की दृष्टि से देखना चाहिए। उसका उतना ही आदर होना चाहिए जितना युवराज का होता है। आप यदि उससे सम्मानपूर्वक वार्ता करेंगे, उसकी बातों को ध्यानपूर्वक सुनेंगे, उसकी उचित माँगों को यथाशक्ति पूरा करने की चेष्टा करेंगे, तो वह एक साहसी बालक बनेगा।

(३) बहुत-सी माताएँ अथवा पिता ऐसे होते हैं जो अकारण बच्चे को अपशब्द कहा करते हैं, 'तू नालायक है', तुझसे कुछ भी न हो सकेगा, तूने तो खानदान का नाम डुबो दिया, घर में बैठा-बैठा मक्खी मारा करता है, आदि शब्द बच्चों को यथाशक्ति न कहना चाहिए।

(४) स्वामी विवेकानंद जी कहते हैं कि "जो माता-पिता दिन-रात बच्चों के लिखने-पढ़ने पर जोर देते रहते हैं, कहते हैं इसका कुछ सुधार नहीं होगा, यह मूर्ख है, गधा है, आदि-आदि उनके बच्चे अधिकांश वैसे ही बन जाते हैं। बच्चों को अच्छा कहने से और प्रोत्साहन देने से, समय आने पर वे अच्छे बन जाते हैं।

(५) दैनिक कार्यों में बच्चों का सहयोग लीजिए, कभी-कभी उनको उनकी सामर्थ्य से अधिक का भी कुछ काम पूरा कराइए, यदि कोई कठिनाई आए, तो उससे पार निकलने की तरकीब भी बताइए, उनका मार्गदर्शन कीजिए। जब वह काम पूरा कर लें तो उनकी पीठ ठोकिए, शाबाशी दीजिए, इससे उनका साहस बढ़ेगा। समय आने पर वह बड़े-से-बड़ा काम अपने हाथों में लेने से न हिचकेंगे।

(६) उनके स्वाभिमान को भूलकर भी ठोकर मत मारिए। एक छोटी घटना याद आती है। एक सिपाही के एक लड़का था। एक दिन वह बच्चा किसी से रूठ गया और लाठी उठाकर उसे मारने के लिए दौड़ा। वह व्यक्ति भाग रहा था। सिपाही ने जब यह देखा तो वह अपने बच्चे के पीछे-पीछे दौड़ा। उसे समझा-बुझाकर वह उसके हाथ से लाठी लेने का प्रयत्न कर रहा था। बड़ी दूर तक पीछे समझाते हुए जाने पर तब कहीं बच्चा माना। उसने रुककर लाठी अपने बाप को दे दी। लोग इस घटना को देख रहे थे, उन्होंने सिपाही से पूछा कि बच्चे की उद्दंडता देखकर आपने उससे तुरंत लाठी क्यों नहीं छीन ली ? सिपाही ने उत्तर दिया कि "ऐसा करना तो सरल था परंतु इससे बच्चे का साहस कुचल जाता, मैं उसमें विवेक-बुद्धि उत्पन्न कर उसे बुरे कामों से रोकना चाहता हूँ लेकिन उसके साहस को कुचलना नहीं चाहता।"

(७) देशाटन कराने, ऐतिहासिक स्थलों को दिखाने तथा वीर पुरुषों के संपर्क में लाने से बच्चे का शौर्य-भाव जाग्रत् होता है। जब भी आपको समय मिले, आप उसे अच्छे स्थानों के दिखाने के लिए ले जाइए।

(८) सबसे बड़ा आदर्श तो आप स्वयं उपस्थित कर सकते हैं। रात में चूहे की खड़बड़ाहट से भयभीत होने वाले माता-पिता भला अपने बच्चे में साहस के भाव कैसे भरेंगे ?

एक सच्ची घटना याद आती है। हमारे रिश्ते के एक चाचा थे। गर्मी का महीना था, वे घर के आँगन में लेटे हुए थे, चाची जी भी लेटी थीं और बच्चे भी थे। आधी रात के समय अचानक कोठे पर कुछ खटखट की आवाज आई। सब लोग चौंककर उठे लेकिन किसी की हिम्मत न पड़ी कि सीढ़ियों से कोठे पर चढ़ने की पहल करें। चाचा बेचारे डर के मारे काँप रहे थे। अंत में वहाँ कुछ भी न निकला, तब चाचा भी जोर-जोर से बढ़-बढ़कर बातें करने लगे। इस

प्रकार की हिम्मत रखने वाले अभिभावक अपने बच्चों में साहस भरने का काम नहीं कर सकते।

(९) साहस के भाव को दृढ़ करने के लिए सफलता प्राप्त करना आवश्यक है। जब खेल में बच्चे की जीत होती जाती है तो उसका साहस बढ़ जाता है, निर्भयता आने लगती है और आत्मविश्वास बढ़ने लगता है, इसी प्रकार परीक्षा में सफलता मिलने पर बच्चे के अंदर से भय की भावना कम होती है, उसका साहस बढ़ने लगता है। अतः आप सदैव यह प्रयत्न करें कि खेल में उसके साथी ऐसे हों जो उसके समवयस्क हों, अर्थात् प्रतिद्वंद्विता में उसके जोड़े के हों। परीक्षा में सफल कराने के लिए आप उसकी शक्ति को तौल लें। प्रायः ऐसा होता है कि बहुत कच्ची उम्र में कुछ लोग अपने बच्चे से आशा करने लगते हैं कि वह दो-दो प्रारंभिक कक्षाएँ एक साथ पास करें। इसके लिए पैसे वाले लोग कई-कई ट्यूशन लगाकर उस पर और बोझ लादते जाते हैं। पढ़ाई का बोझ जब बच्चे पर अधिक हो जाता है, तो दो-तीन कक्षाओं में तो वह तेजी दिखाता है और आगे चलकर उसकी गति मंद पड़ जाती है। वह कूचर बैल की नाईं अगली कक्षाओं का बोझ उठाने में सर्वथा असमर्थ हो जाता है। तब परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने के अतिरिक्त और क्या चारा हो सकता है ! माता-पिता तब बच्चे को बुरा-भला कहकर उसकी हिम्मत को पस्त करने लगते हैं। वे इस बात को नहीं समझते कि दोष तो उन्हीं का है। इसलिए यदि आप का बच्चा कक्षा में कमजोर चल रहा है तो उत्तम तो यह होगा कि आप उसे आगे की कक्षाओं में जाने से रोककर उसकी कमजोरी को दूर करिए। शिक्षकों को लालच दिखाकर, सिफारिश पहुँचाकर अथवा किन्हीं अन्य अनुचित उपायों से उसे कच्ची तरक्की दिलाना कदापि हितकारी सिद्ध न होगा। बच्चे को भी आप समझा-बुझाकर यही परामर्श दीजिए कि यदि वह उसी कक्षा में जिसमें वह कमजोर है, एक वर्ष और पढ़कर अपनी पिछली

कमजोरी मिटा लेगा तो फिर आगे कभी फेल होने की संभावना न रहेगी। यदि आप बच्चे से ऐसा करा लेते हैं, तो उसका साहस कभी कम नहीं हो सकता।

पहले जैसी स्थिति तो अब नहीं है जिसमें वीर सैनिकों के उदाहरण काम में आएँ। लेकिन खेती-बारी, व्यापार, पढ़ाई, नौकरी एवं उद्योग-धंधों में जिन लोगों ने अपूर्व साहस का परिचय देकर अपने बिगड़े कारोबार को जमाया हो, ऊसर खेती को आबाद कर उसे अन्नपूर्ण बनाया हो, निर्धनता रूपी पिशाचिनी से मोर्चा लेते हुए जिन लड़कों ने अपनी पढ़ाई को जारी रखकर आखिर में सफल हुए हों, ऐसे लोगों के उदाहरण बच्चों के सामने रखने चाहिए। यदि हो सके और ऐसे लोग अपने क्षेत्र में हों तो कभी-कभी अवसर पाकर अपने बच्चों को उनसे मिलाना, उनके प्रेरणात्मक संपर्क में लाना हितकर होता है।

बच्चों को सामूहिक सेवा के कार्यक्रम में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। स्काउटिंग, रेडक्रास, सेंट जान्स एम्बुलेंस अथवा सेवा समितियों के कार्यों में भाग लेने से कभी न रोकना चाहिए। उनको प्रोत्साहित भी करना चाहिए। स्काउटिंग बच्चों के लिए बड़ा उपयोगी साधन होता है।

(१०) नदी, पहाड़, जंगल, प्राकृतिक दृश्यों का अवलोकन जहाँ एक ओर बच्चे में व्यावहारिक ज्ञान भरते हैं, वहाँ वे कल्पित धारणाओं, भयोत्पादक शंकाओं का निवारण करते हैं। अतः समय-समय पर इन स्थानों पर बच्चे को ले जाकर जानकारी करानी चाहिए।

(११) साहस के विपरीत अवगुण 'भय' है। भय कभी-कभी तो सत्य परिस्थितियों से पैदा होता है, परंतु अधिकांशतः शंकाओं के आधार पर उत्पन्न हो जाता है। भूत-प्रेत का भय, देवी-देवताओं का भय, पुलिस और अफसर का भय, यह सब छोटे-छोटे बच्चों में अपने

माता-पिता, परिवार तथा गाँव वालों से मिले हैं। हमारे देश में अफवाहें बहुत उड़ती हैं। लोग सत्य बात का पता कम लगाते हैं और मन गढ़ंत, कपोल-कल्पित बातों पर तुरंत विश्वास कर लेते हैं। यह सारी बातें उनके हृदयों में भय उत्पन्न करती हैं। उनका साहस दब जाता है। इसलिए जहाँ एक ओर झूठी डींग हाँककर आप बच्चे के हृदय में अविश्वास पैदा न करें, वहाँ यह भी आवश्यक है कि उसके सामने कायरता की बातें न करें। भविष्य के कर्णधारों को कायर बनाना कोई बुद्धिमानी का कार्य नहीं है।

धैर्य एक महत्त्वपूर्ण गुण—जीवन रूपी गाड़ी का दूसरा पहिया है—'धैर्य'। अकेला साहस उस समय तक पंगु है, जब तक धैर्य का सुमिलन उसके साथ न हो।

विपत्ति के पहाड़ टूटने पर चारों ओर से निराशापूर्ण परिस्थितियाँ भले ही हों लेकिन धैर्यवान व्यक्ति उन सबका निवारण कर डालता है। महात्मा गांधी को अहिंसात्मक सत्याग्रह चलाने में कितनी बार असफलताओं का मुँह देखना पड़ा। सन् १९२१, १९३१, १९३३ आदि के सभी सत्याग्रह पूर्ण सफलता नहीं दे सके। बीच में ही कुछ बाधाओं के कारण उन्हें रोकना पड़ा। सन् १९२१ का सत्याग्रह बड़े वेग से चल रहा था, सबकी धारणा बनती जा रही थी कि सरकार आजकल में ही उलटने वाली है लेकिन चौरी-चौरा के हिंसात्मक कांड से विचलित होकर गांधी जी ने सत्याग्रह स्थगित कर दिया। संपूर्ण देश में एक निराशा एवं शिथिलता का वातावरण फैल गया। मगर क्या वह योद्धा कभी हिम्मत हार सकता था ? सन् १९१४ से १९४७ ई. तक निरंतर संघर्षरत रहना पड़ा। इन दिनों कितना उत्साह जगा, कितने निराश हुए, लेकिन अविचल गति से परिस्थितियों का सामना करते हुए आगे बढ़ते गए, अंत में सफलता ने उनके पैर चूमे।

थोड़ी-सी कठिनाई पर हिम्मत हार जाने वाले मनुष्य अच्छे नहीं माने जाते। जीवन सदा एकरस नहीं रहता। यह उस नदी की भाँति है जिसमें कभी तेज चढ़ाव आता है और कभी दिखावे की लहरें ही होती हैं। हमें हर दशा में इसे पार करना है। इसका पानी कम गहरा हो तो बेपरवाही के साथ हँसते हुए और मुस्कराते हुए, चढ़ाव अधिक हो तो बड़ी सावधानी, साहस और धैर्य के साथ।

पालन-पोषण की त्रुटि समझिए या मन की बनावट का दोष। हममें अनेक लोग ऐसे हैं जो हर्ष और विनोद के क्षण तो हँसी-खुशी से बिता देते हैं परंतु कष्ट और कठिनाई सहन करने की तनिक भी सामर्थ्य नहीं रखते। जैसे ही कोई दुःख या कष्ट सामने आता है, वे घबरा जाते हैं। काँटा भी चुभ जाए तो चिल्लाना शुरू कर देते हैं। कभी जमाने के रूखेपन की शिकायत और कभी साथियों की बेवफाई का रोना। भाग्य, ईश्वर की इच्छा तथा मित्रों का चलन सबमें से उनको शत्रुता की दुर्गंध आने लगती है। मानों समस्त संसार उनका शत्रु है।

ऐसे लोगों के जीवन में वास्तविक कठिनाइयाँ इतनी नहीं होतीं जितनी निराधार शिकायतें। हर समय रोना, चीखना, मुख को उदासीन बनाए रखना, आत्मग्लानि ग्रस्त रहना और शिकायतों का विष उगलते रहना उनके स्वभाव और प्रकृति के अंग बन जाते हैं। जिस कार्यालय या सभा में इस प्रकार का एक भी व्यक्ति बैठा हो, वहाँ के द्वार, दीवार, कमरे में पड़ी प्रत्येक वस्तु और आस-पास के सभी लोगों के मुँह पर निराशा की झलक दिखाई देने लगती है। एक व्यक्ति का निराश मुख आस-पास के सभी लोगों के मनोरंजन को भंग कर देता है। दर्द भरी एक ही बात सारी सभा को उदासीन कर देती है।

कई साधारण-सी कठिनाइयाँ हमें केवल इसलिए हौआ बनाकर डराती और हमारे जीवन को कटु बना देती हैं, क्योंकि हम उनके साथ

समझौता नहीं करते। अन्यथा जिस प्रकार हमारे अंदर यह शक्ति होती है कि जीवित व्यक्तियों से समझौता करके द्वेष को मित्रता और सहृदयता में बदल देते हैं, उसी प्रकार अपने रूठे हुए दुःखों को भी मना सकते हैं। जिस दुःख के साथ समझौता कर लिया जाए, वह हमारे मन में शिकायतों का विष नहीं पैदा होने देता। इसके विपरीत रूठा हुआ दुःख हमारे मन और मस्तिष्क, शरीर और स्वभाव का रक्त तो चूसता है, साथ-साथ हमारे साथियों की प्रसन्नता की जड़ें भी काट देता है।

अभिभावकों का कर्तव्य—अपने जीवन से ही धैर्य की शिक्षा दी जा सकती है। बात-बात में रोना, चिल्लाना, प्रकृति और दैव को दोष देने से किसी की मुसीबत कटती नहीं दीखती। संकटों और दुःखों से तो तभी छुटकारा मिल सकता है जब उससे मुक्ति पाने के लिए प्रयास किया जाए। संसार की सत्यता को समझने के प्रयास से ही यह भाव उत्पन्न होते हैं। जब हम इस तथ्य को समझ लेते हैं तो सबको दुःख-सुख के झूले में झूलना पड़ता है। कभी दुःखों का सामना करना पड़ेगा तो कभी सुख भोगना पड़ेगा। इससे कोई व्यक्ति छुटकारा नहीं पा सकता तभी मैथिलीशरण गुप्त जी की पंक्तियों पर हमें विश्वास होगा कि—

संसार की समरस्थली में धीरता धारण करो।
चलते हुए निज इष्ट पथ पर संकटों से मत डरो।

खेल-खेल में बच्चों को कभी-कभी निरंतर पराजय का मुँह देखना पड़ता है। कई बार लगातार हार से कई बच्चे तो हिम्मत हार बैठते हैं, लेकिन कुछ उससे निराश न होकर सतत प्रयत्न में लगे रहते हैं। परिणाम यह होता है कि वह अपनी पराजय को विजय में बदलने में सफल हो जाते हैं। हमें यह देखते रहना चाहिए कि बच्चे कहाँ और किस अवस्था में हिम्मत हार रहे हैं। कम पढ़ाई और परीक्षा की कठिनता से इनमें दुर्बलता के भाव उठ आते हैं। कभी-कभी आर्थिक

तंगी, घर से फीस आदि की व्यवस्था न होने के कारण वे पढ़ने से मन मारकर बैठ जाते हैं। ऐसे अवसर पर आपके थोड़े-से उत्साहवर्द्धक शब्द बिजली जैसा चमत्कार दिखा सकते हैं। किसी बच्चे को आप उदास देखते हैं और यदि वह आपसे अपनी विपत्ति का रोना रोता है तो उसे दुत्कारना, ठुकराना अथवा झिड़ककर उसे भगा नहीं देना चाहिए। आप उसे सहानुभूतिपूर्वक अपने पास बिठा लीजिए। प्रेम से उसकी सब बातों को सुनिए। उसकी कठिनाई कितनी भी छोटी या मनगढंत क्यों न हो, लेकिन आपकी मुखाकृति से यह बात कदापि झलक न पाए कि आप नकली तरीके से उसकी बातों को सुन रहे हैं। यदि इसका तनिक भी आभास बच्चे को हो गया तो या तो वह आपसे अपने दिल की बात कहेगा ही नहीं और यदि कह भी दी हो तो आपके उपदेश का उसके ऊपर किंचित्मात्र भी प्रभाव न पड़ेगा। बड़ी तल्लीनता के साथ आप उसकी बातों को सुनिए और तब सहानुभूति, प्रेम तथा आत्मीयता के साथ उससे छुट्टी पाने का उपाय बताइए। यदि वह निराश हो चला हो तो उसे आशा बँधाइए, धैर्य दिलाइए।

धैर्य की कसौटी दो परिस्थितियों में भिन्न रूप से होती है— एक तो किसी दुर्घटना या आकस्मिक विपत्ति के समय। चलते-चलते किसी रिक्शा, ताँगा से टकरा जाना; गिर पड़ने से चोट लगना अथवा मार-पीट की अवस्था आ जाना। इस समय भी घर के लोग घबरा जाते हैं। इतनी बुरी तरह से हाथ-पैर पीटने लगते हैं, मानो ऐसी विपत्ति उन्हीं पर पड़ी है। हिम्मत हार बैठते हैं और दुर्घटना से छुट्टी पाने के लिए जो उपाय करने चाहिए वे नहीं करते।

छोटी-छोटी टकराहट, पड़ोसी से मार-पीट या उद्दंडता के कारण कोई घटना उत्पन्न कर देना तो बालकों का स्वभाव ही होता है। उनको इसमें आनंद मिलता है। कहते हैं कि 'तरुणाई से आँखें अंधी हो जाती हैं।' दूसरों से छेड़-छाड़ करने की ओर

रुझान अधिक हो जाती है। इस अवस्था में स्कूलों में देखिए, बच्चे आपस में दो दल बनाकर अपनी शक्ति की आजमाइश करने की चेष्टा करते रहते हैं। अकारण दूसरे लड़कों अथवा राह चलने वाले लोगों को छेड़ते हैं। ऐसा करने से नई-नई विपत्तियों का खड़ा हो जाना स्वाभाविक है। परंतु इन्हीं सबके द्वारा बच्चे अपने 'साहस' का प्रदर्शन करते हैं। यदि उनकी इस प्रवृत्ति को अच्छाई और पुरुषार्थ की ओर मोड़ा जाए तो उसका अच्छा फल निकल सकता है। बच्चों के साहस को मेले-ठेले या सार्वजनिक सभाओं में भीड़ को सुव्यवस्थित करने में, घाटों के किनारे स्नान करने वाले यात्रियों को डूबने या कुचलने से बचाने की व्यवस्था करने में लगाना चाहिए। यदि बच्चों को सार्वजनिक, रचनात्मक सेवा कार्यों में लगाया जाए, तो उनमें साहस और धैर्य दोनों गुणों का विकास होगा। माता-पिता को चाहिए कि स्कूलों की ओर से इस प्रकार के जो आयोजन हों, उनमें तो बच्चों को शामिल कराएँ ही, साथ ही स्वयं भी चेष्टा करके बच्चों को इन अवसरों से लाभ उठाने का अवसर दें। उन्हें क्रियात्मक और ज्ञानात्मक दोनों रूप से यह बताने की चेष्टा माँ-बाप को करते रहना चहिए कि किसी आकस्मिक विपत्ति के आ जाने पर हिम्मत हार बैठना केवल कायरता है। अधिक रोने-पीटने, गिड़गिड़ाने से विपत्ति से छुटकारा नहीं मिलता। ऐसे अवसर पर अपने धैर्य को न खोकर उस विपत्ति से बचने के उपाय सोचने चाहिए। कोई भी व्यक्ति यदि विपत्ति के समय शांत चित्त से उपाय खोजे तो बहुतेरे उपाय निकल सकते हैं।

दूसरी प्रकार की विपत्ति की अवधि लंबी होती है। आर्थिक कठिनाई, पढ़ने में मंदबुद्धिता, विमाता का द्वेष अथवा मातृहीन या पितृहीन होने से परिवार के अन्य सदस्यों का उपेक्षा भाव रखना इसके कारण होते हैं।

बालक ध्रुव की कहानी कौन नहीं जानता। उन जैसे हजारों बालक विमाता के अनुरोध पर पिता की गोद से पृथक कराए जाते हैं। लेकिन वे अपनी दीनता को सौभाग्य में बदलने की चेष्टा नहीं करते इसीलिए जीवन भर उसी का रोना रोने के अतिरिक्त उन्हें कुछ नहीं मिलता। ध्रुव ने अपने साहस का परिचय दिया।

भक्त प्रहलाद की कहानी भी तो हमें यही शिक्षा देती है। पिता हिरण्यकशिपु बालक के विचारों से क्रुद्ध हो जाते हैं। वे चाहते हैं कि मेरा पुत्र प्रहलाद मुझी को ईश्वर माने, वह ईश्वर की भक्ति न करे, मगर प्रहलाद ने सत्य-मार्ग को न छोड़ा। कितनी ही विपत्तियाँ उसके ऊपर ढहाई गई परंतु क्या प्रहलाद मरा ? नहीं, उसने हिम्मत न हारी। अंत में उनको ऐसी विजय मिली जैसी बिरलों को ही मिलती है। नरसिंह रूप में भगवान को आकर उनकी रक्षा करनी पड़ी।

बहुत दूर हम न जाएँ। शिवाजी ने बचपन ही से तो अपने धैर्य का परिचय दिया। एक छोटा बालक बीजापुर जैसी शक्ति का विरोध करने की तैयारी करे, तो वह भी कुछ जंगली बच्चों को अपना सहयोगी बनाकर। भला यह बात बुद्धि में आने वाली है ? लोग हँसते थे शिवा की मूर्खता पर।

जब शिवाजी की कार्यवाहियाँ बढ़ने लगीं तो बीजापुर के सुलतान ने शिवाजी के पिता शाहजी को, जो कि उन्हीं के दरबार में एक उच्च पद पर थे, बंदी बना लिया कि इसी से शिवा भयभीत होकर हमारी अधीनता स्वीकार कर ले। मगर शिवाजी ने हिम्मत न हारी। उन्होंने अपने पिता को छुड़ाया और स्वयं भी अपनी कार्यवाहियाँ जारी रखीं। जनसाधारण को यह नहीं मालूम था कि शिवाजी को कितनी विपरीत परिस्थितियों का सामना करना पड़ता था मगर कभी भी उन्होंने अपने धैर्य को न छोड़ा। इसी से वे हिंदू साम्राज्य के संस्थापक एवं लाखों लोगों के आराध्य देव माने जाते हैं।

मुगल सम्राट अकबर जब केवल १३ वर्ष का था तभी पिता हुमायूँ की मृत्यु से उसे गद्दी पर बैठने का अवसर मिला। तब वह अपने संरक्षक बैरम खाँ की संरक्षकता में था। परंतु क्या साहसी व्यक्ति कभी किसी का मुँह ताकता रहता है ? उसने अपने सारे बंधन काटे और अल्पायु में ही वह विशाल साम्राज्य का कुशल प्रशासक बना। यदि विपत्तियों से घबड़ाकर वह हिम्मत हार बैठता तो क्या उसे चमकने का अवसर मिलता।

भक्त कवि मीराबाई को क्या हम नहीं जानते ? उनके पति राणा ने उन पर कितनी विपत्तियाँ डालीं। मगर देवी मीरा ने धैर्य-पूर्वक उनको सहन किया। कभी न उन्होंने हिम्मत हारी और न राणा अथवा किसी अन्य विराधी से बदला लेने में अपनी शक्ति लगाई। वे अचल और अटल बनकर अपने पथ पर चलती गईं। इसी से मीराबाई आज भक्त शिरोमणि नारी कवि कहलाती हैं।

आज भी हम देखें कि पिता की मृत्यु से कितने ही बच्चे हिम्मत हार बैठते हैं, अपनी पढ़ाई को त्यागकर अपने विकास को रोक देते हैं। परंतु ऐसे भी हैं जो हर दशा में अपना मार्ग खोज ही लेते हैं। अपना काम-काज करते हुए पढ़ाई को चालू रखकर प्राइवेट रूप में बी० ए०, एम० ए० एवं उच्च शिक्षा प्राप्त करके अपने परिश्रम से उच्च पदों पर पहुँचने वालों के उदाहरण दुर्लभ नहीं हैं।

जीवन के हर क्षेत्र में साहस और धैर्य की आवश्यकता है। जो अपने धैर्य को न खोकर साहस का परिचय देता रहता है, वह धीरे-धीरे दैवी मार्ग की ओर बढ़ता जाता है। अंत में उच्च पद पर पहुँचकर उसे चमकने का अवसर मिलता है।

बच्चे की यह अमूल्य संपत्ति है, आप इसे अपने बच्चे को दें तो वह जीवन भर उसे खर्च करके भी कभी भिखारी न बनेगा। ज्यों-ज्यों वह इन संपत्तियों को खर्चेगा वह और धनी बनता जाएगा।

सेवा धर्म की महत्ता

रामचरितमानस में भरत जी ने रामचंद्र जी से पूछा, "महाराज धर्म क्या है और अधर्म क्या है ? सब हमें बताइए।" बहुत संक्षेप में जो उत्तर श्री रामचंद्र जी ने भरत को दिया, वह हमारे भी समझने के लिए है। उन्होंने कहा—

"परहित सरिस धर्म नहीं भाई। पर पीड़ा सम नहीं अधमाई॥
बरनत सकल पुरान वेदकर। कहहुँ तात जानहि कोविद नर॥"

अर्थात् दूसरों की भलाई करने के समान कोई धर्म नहीं और दूसरों को कष्ट पहुँचाने के समान कोई अधर्म नहीं। यह वेद और पुराणों का निर्णय है, मेरी ही बात नहीं। इस रहस्य को विद्वान लोग ही समझते हैं।"

कितनी बड़ी बात भगवान ने समझा दी। धर्म के ऊँचे-ऊँचे सिद्धांतों पर तर्क-वितर्क करना, उनकी दुरूह गुत्थियों की शास्त्रीय विवेचना करना धर्म नहीं है, सर्वश्रेष्ठ धर्म है दूसरों की सेवा करना।

'सेवा' जैसी अमूल्य निधि से बच्चों को वंचित रखना उनके साथ भारी अन्याय करना है। माँ-बाप को बच्चे के सेवाभावों को विकसित करने का प्रयास करना चाहिए।

व्यक्तिगत स्वार्थ ही सब कुछ नहीं है। केवल व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति से ही हमारा कुछ हित होने वाला नहीं है। यह सहकारिता का युग है। हमें समाज में प्रत्येक व्यक्ति के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चलना होगा। इसी में हमारा और समाज का हित है। हर व्यक्ति को यदि पुल बनाकर नदी पार करनी पड़े, तो उसका सारा जीवन केवल पुल बनाने के साधन जुटाने में ही लग सकता है। लेकिन जब नदी पर पहले से पुल बँधा हो, तो हर आने-जाने वाला उससे पार उतरता है। मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी और लघु जीव-जंतु भी उससे पार उतरते हैं। हमें केवल सामाजिक कार्यों

तक ही सीमित न रहना चाहिए। हमें अपने पूर्वजों, संस्कृतियों में सामंजस्य स्थापित करना चाहिए। यह भी सेवा ही है। सेवा ही नहीं, कर्तव्य भी है।

सेवावृत्ति अपनाने के लिए इस कर्तव्य का पालन करने के बहुत-से तरीके हो सकते हैं। बचपन से सच्ची सेवा की ओर बाल-हृदय को मोड़ना चाहिए। इसके लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं—

(१) स्काउटिंग की दस प्रतिज्ञाओं में से एक प्रतिज्ञा यह भी है कि हर विद्यार्थी को नित्य एक सेवा कार्य करना चाहिए। किसी प्यासे जानवर को पानी पिलाना, किसी प्यासे राही को एक लोटा जल पिलाकर तृप्त करना, मार्ग में काँटा पड़ा हुआ हो, तो उसे उठाकर फेंक देना भी सेवा का ही रूप है। पता नहीं, अँधेरे में चलते समय किसी के वह काँटा गड़ जाए। लोग केले खाकर सड़कों पर ही केले के छिलके फेंक देते हैं। सड़क पर चलने वाला कोई व्यक्ति उस छिलके से फिसलकर गिर सकता है। उसकी टाँग टूट सकती है। हमारी थोड़ी लापरवाही के कारण कितनी बड़ी हानि दूसरे व्यक्ति को हो सकती है। यह भी एक सेवा कार्य है कि आप इधर-उधर यदि सड़कों पर छिलके देखें तो उन्हें उठाकर एक ओर फेंक दें। जो लोग ऐसा करते हुए दीखें उन्हें आप मना भी कर दें, तो समझिए आप समाज की सेवा कर रहे हैं।

(२) आज सबसे बड़ी कमी जो हम लोगों में है, वह यह कि सार्वजनिक संपत्ति को हम अपनी चीज नहीं समझते। इसलिए उसे नष्ट करने, तोड़ने-फोड़ने अथवा गंदी करने में हमें तनिक भी हिचक नहीं मालूम होती है। लोग अपना द्वार तो बुहारेंगे लेकिन उसका कूड़ा उठाकर सामने की सड़क पर फेंक देंगे। अपने दरवाजे पर खड़े-खड़े सड़क पर थूक देंगे। पान की पीकें तो आपको सर्वत्र ही दिखाई पड़ेंगी। अपने खेत में पानी ले जाने के लिए किसान सड़क

खोदकर पानी की नाली बना लेगा। लेकिन पानी सींचने के बाद उस नाली को पाटकर ठीक कर देना वह अपना कार्य नहीं मानता। न जाने कितने चलने वाले उसमें गिरकर टाँग तोड़ते हैं, बैलगाड़ियाँ फँसती हैं, स्वयं वह किसान भी चाहे उस नाली में कई बार गिर जाए फिर भी उसे इस बात का ध्यान नहीं आता कि अपनी खोदी नाली को पाट देना चाहिए। ये सब सेवाएँ ऐसी हैं जो बच्चों के वश की हैं। यदि उनका ध्यान इस ओर आकर्षित किया जाए, तो वे बड़ी उपयोगी सेवाएँ हँसते-हँसते कर सकते हैं।

(३) हम ऊँची-ऊँची अध्यात्म की बातें तो करते हैं लेकिन प्रतिदिन के जीवन में सफाई एवं स्वच्छता के साधारण नियमों का पालन तक नहीं करते। अपने बच्चों से सड़क पर टट्टी पाखाना करवाना, पेशाब करवाना, नाक छिनककर, थूककर अपने चारों ओर गंदगी का वातावरण हम उपस्थित करते रहते हैं। माता-पिता को चाहिए कि वे स्वयं इन गंदी आदतों से बचे और अपने बच्चों को भी इन आदतों से बचावें।

(४) सबसे बड़ी सेवा अपने को प्रसन्न रखना है। जो बच्चा अथवा जवान हर समय प्रसन्नचित्त रहता है। संकट में भी चेहरे पर उदासी लाने अथवा रोने और गिड़गिड़ाने की आदत नहीं डालता, समझना चाहिए कि वह समाज की बहुमूल्य सेवा करता है। हँसमुख बालक घर की प्रसन्नता का केंद्रबिंदु बन जाता है। वह दस उदासों से मनोरंजक बातें कहकर उनके कष्टों को दूर करता है। रोनी सूरत वाला बच्चा दस लोगों की उदासी का कारण बनता है। अतः माता-पिता को ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करनी चाहिए और अपने बच्चों को प्रारंभ से ही हँसमुख रहने की शिक्षा देनी चाहिए। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचंद्र जी का उदाहरण हमारे सामने है। उनके ऊपर कितनी ही कठिनाइयाँ आईं मगर वे सदैव प्रसन्नचित्त रहे। **"प्रसन्न वदनं रामं"** ऐसा वाल्मीकि जी ने उनके गुणों का बखान किया है।

हँसमुख बालक का स्वास्थ्य अच्छा रहता है। महात्मा आनंद स्वामी जी कहा करते हैं कि हर व्यक्ति को नित्य एक बार खूब खिलखिलाकर हँसना चाहिए। खिलखिलाकर हँसने से हमारे सभी नाड़ी-तंतुओं में तनाव मुक्ति होती है जिससे शारीरिक और मानसिक आरोग्य का मार्ग प्रशस्त होता है।

(५) क्रिया द्वारा जितनी दूसरों की सहायता की जा सकती है, उससे कहीं अधिक मीठे वचनों द्वारा हो सकती है। जो बच्चे समाज-सेवा की अभिलाषा रखते हैं अथवा जो माता-पिता अपने बच्चों को समाज-सेवा का पाठ पढ़ाना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि अपने बच्चों को प्रिय बोली बोलने का अभ्यास कराएँ। बच्चों की आदत होती है कि जिनसे वे भय खाते हैं, उनके सामने बड़ी विनम्रता से बातें करेंगे। बोली की परख सभा सोसाइटी में नहीं, चलते-फिरते समय किसी अपरिचित द्वारा कुछ पूछने पर आपके बात करने के ढंग से होती है। दूसरे एक कष्टों से पीड़ित नैराश्य हृदय का व्यक्ति आपके पास आकर अपना दुःख कहे, तो यदि आप अपने मीठे और आशापूर्ण वचनों द्वारा उसके कष्ट पर मरहम पट्टी कर देते हैं, ढाँढ़स बँधा देते हैं, तो समझना चाहिए कि एक डूबती नौका को आपने बचाकर कई लोगों की जान बचाई। पता नहीं कि जो निराश व्यक्ति आपके पास आया था, यदि कटु और निराशापूर्ण शब्दों से आपने उसके कष्टों को और बढ़ा दिया होता तो संभव है कि वह अपने जीवन से निराश होकर कहीं जाकर पानी में डूब जाता अथवा फाँसी लगाकर अपनी जिंदगी खो देता। ऐसी घटनाएँ आएदिन हुआ भी करती हैं। यदि लोग निराशाजनक बातें करना छोड़ दें, यदि बेमतलब की बातें करके दूसरों को चिढ़ाने, उलझाने, ताव देने, लज्जित करने अथवा पीड़ा पहुँचाने की आदतों को छोड़ दें, तो संसार से आधे झगड़े-झंझट और कष्ट दूर हो सकते हैं। जिस शांति को साकार रूप देने में बड़े-बड़े

शासनाध्यक्ष सफल नहीं हो पा रहे हैं, उस शांति को वाणी पर संयम लाकर लाया जा सकता है।

हमें मीठी और आशाजनक बातें करना सीखना चाहिए, ऐसा करके हर व्यक्ति अपने लिए सौभाग्य को निमंत्रण देता है। भावी उन्नतिशील भारत को तो विश्व का नेतृत्व करना है। उसे जगद्‌गुरु बनना है, फिर यदि बहुसंख्यक नागरिकों में यह गुण नहीं आएँगे तो यह भविष्यवाणी कैसे साकार होगी ? हम और आप अपने बच्चों के बातचीत के ढंग पर विशेष ध्यान दें। हमें, चाहे अपने परम विरोधी से ही क्यों न बात करनी हो मगर अपनी मर्यादा को न त्यागना चाहिए। इस बात को सदैव जानने का प्रयत्न करना चाहिए कि बच्चा किस ढंग से बात करता है ? चलते-फिरते उसके बात करने का तरीका देखना चाहिए। समय-समय पर उसे किन्हीं बातों का प्रसंग उठाकर आप समझा भी सकते हैं। आशापूर्ण ढंग से बात करने के उदाहरण प्रस्तुत करके आप उसकी महत्ता का भी प्रतिपादन कर सकते हैं।

(६) परिवार तथा पड़ोसी के घरों के छोटे-छोटे काम कर देना भी सेवा के रूप हैं। मान लीजिए कि आप के पड़ोसी के घर के पुरुष किसी काम से बाहर चले गए हैं, घर में केवल स्त्रियाँ हैं, उन्हें बाहर से कुछ सामान मँगाने की जरूरत पड़ती है, वे दरवाजे से आपके बच्चे को पुकारती हैं, आप तुरंत अपने बच्चे को वहाँ भेजकर उनके काम को ठीक ढंग से कर देने के लिए कह दें।

इस प्रकार छोटे-छोटे काम करके बच्चे सेवा के बड़े-बड़े पाठ पढ़ सकते हैं। अभिभावक अपने बच्चों को नित्य सेवा कार्य करने के लिए उत्साहित करें। समय-समय पर बातचीत के दौरान उसकी भी छान-बीन करलें कि आज उसने कौन-सा सेवा कार्य किया ? यह सेवा चाहे कितनी भी छोटी क्यों न हो लेकिन इसकी आदत पड़ जाने

से आपका बच्चा महत्ता के सोपानों पर चढ़ने के लिए सक्षम बनता जाएगा।

चरित्र-निर्माण

चरित्र क्या है ? वैसे तो चरित्र दो प्रकार के हो सकते हैं— सच्चरित्र और दुश्चरित्र, परंतु आम बोल-चाल की भाषा में हम चरित्र का अर्थ लेते हैं सच्चरित्रता से ही। शिक्षा विशारदों ने अच्छी आदतों को चरित्र बताया है। एक व्यक्ति जब बढ़कर बहुत-से गुणों, विशेषताओं की खान होता है, उसमें सत्य, साहस, धैर्य, उदारता, प्रेम, विनम्रता, उत्साह, सौजन्यता, अभयता आदि गुण जितनी प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, उतना ही उसके कार्य ठोस और संसार के लिए मंगलकारी होते हैं। वही व्यक्ति चरित्रवान कहलाता है। अभयता का पाठ उपदेश से नहीं पढ़ाया जाता। वह तो स्वाभाविक गुण है। कई विषम परिस्थितियों में कई लोग अपना धैर्य नहीं खोते, आपत्तियों, का पहाड़ टूटने पर भी घबराते नहीं हैं, हँस-हँसकर उसका सामना करते रहते हैं। इन्हीं को हम मर्द कहते हैं। पांडवों पर कितनी विपत्तियाँ आईं। इंद्रप्रस्थ के वैभवशाली साम्राज्य को त्यागकर दस वर्षों तक वन-वन की ठोकरें खाते रहे। भूख-प्यास सही, न कोई संगी और न साथी, परंतु घबराए नहीं। राम के जीवन में ड्रामा के पटाक्षेपों की तरह कितनी घटनाएँ बदलीं। सायंकाल यदि युवराज पद के उम्मीदवार, स्वागत, सत्कार, सभी की आँखें उनकी ओर लगीं तो दूसरे ही क्षण तपसी वेश में वन की ओर जा रहे हैं। मगर इन सारी परिस्थितियों में राम ने धैर्य नहीं खोया, साहस और आत्मविश्वास को अपने हाथों से नहीं जाने दिया। इसीलिए हम उन्हें युग-युग तक के लिए समाज का प्रेरणा-स्रोत मानते हैं। वे चरित्रवान कहलाते हैं। ऐसे भी व्यक्ति हमारे सामने हैं जो तनिक-सा कष्ट आने पर बच्चे जैसा ढाड़ मारकर रोने लगते हैं, घबरा जाते हैं, हिम्मत खो बैठते हैं।

इस प्रकार की बहुत-सी विशेषताएँ और दुर्गुण मनुष्य के चरित्रवान होने अथवा दुश्चरित्र होने का निर्णय करती हैं।

चरित्र की आधारशिला—बड़े होकर जिन गुणों और अवगुणों को हम खिले फूल के समान देखते हैं, उनका जन्म बचपन में होता है। चरित्र पर वंशानुक्रम और वातावरण दोनों का प्रभाव पड़ता है। जैसे साखू के बीज़ से साखू का वृक्ष तैयार होगा। यह भले ही हो कि देखभाल से वह पौधा पहले वाले वृक्ष से अधिक मोटा हो जाए अथवा उपेक्षा से कम हो जाए। इसी प्रकार माता-पिता के रूप, गुण और स्वभाव को बच्चा जन्म से ही लेकर उत्पन्न होता है। यहाँ तो उसका बढ़ावा मात्र होता है। माता-पिता के चरित्र की विशेषताओं की छाप उस पर अवश्य पड़ी होती है। यह दूसरी बात है कि अनुकूल या प्रतिकूल वातावरण के कारण वे अधिक विकसित हो जाएँ या मुरझा जाएँ। इसलिए इस बात की बहुत आवश्यकता है कि चरित्र की बुनियाद ऐसी मजबूत और सुंदर डाली जाए कि आगे चलकर उसी की नींव पर चरित्र का आदर्श विकास हो सके।

घर का वातावरण, अपने बड़ों का उदाहरण, माता-पिता के संस्कार तथा संगी-साथियों और अड़ोस-पड़ोस की सिखावटें आदि का बड़ा प्रभाव पड़ता है।

माता-पिता की अधिक लापरवाही, भूल और अधिक लाड़-प्यार या कठोरता से ही छोटा बच्चा भी जिद्दी, भोंदू, चिड़चिड़ा, स्वार्थी, डरपोक तथा क्रोधी बन जाता है। एक बिगड़े हुए बच्चे के कारण घर भर परेशान रहता है। पति-पत्नी के मन में मनोमालिन्य छा जाता है। बच्चा उन्हें भाररूप दीखने लगता है, विशेषकर माता संतान-प्रेम और आलोचना—इन दो पाटों के बीच में दबकर बहुत लाचार होती है। बच्चा जैसे-जैसे बढ़ता है, उसकी आदत बिगड़ती है और तब माता-पिता सोचते हैं, हम क्या कर सकते हैं, हमने तो इसे नहीं बिगाड़ा है, यह तो बचपन से ही ऐसा था। पिता

क्रोधित होकर बच्चे को बिगाड़ने का सारा दोष माता पर मढ़ने लगता है और माता अपने को निर्दोष साबित करके पिता पर सारा दोष लगाती है। परिणामस्वरूप उन दोनों में बच्चे को लेकर कटुता प्रारंभ हो जाती है। लड़ाई-झगड़े होने लगते हैं और प्रेम-सूत्र में बँधी हुई गृहस्थी कलह, शंका, द्वेष और चिड़चिड़ेपन का अड्डा बन जाती है।

बच्चे कारखाने के पुर्जे नहीं हैं, इसलिए एक विशेष नमूने के अनुसार उनके चरित्र को ढालने की बात सोचना उपयुक्त नहीं। हर बच्चे की जन्मजात विशेषताएँ प्रत्येक दूसरे बच्चे से भिन्न होती हैं। गुण, कर्म और स्वभाव में एक बच्चा दूसरे से मिलता नहीं है। माँ-बाप को चाहिए कि बच्चे की इन विशेषताओं का अध्ययन करके इस बात की चेष्टा करें कि उन्हीं के आधार पर बच्चा अपने चरित्र को इस तरह ढाले कि वह अपने घर में, समाज में एक उपयोगी प्राणी प्रमाणित हो सके तथा स्थिति और समयानुसार व्यवहार करना सीख जाए। एक उपयोगी, आदर्श नागरिक एवं परिजन बनने के लिए दया, विनम्रता, निःस्वार्थता, सहनशीलता, धीरता, दूसरे के अधिकारों के प्रति सम्मान और सहानुभूति की भावना आदि गुण आवश्यक हैं। अबोध बच्चा समाज की जिम्मेदारी को नहीं समझता। माता-पिता को दैनिक जीवन में उसे इसकी शिक्षा देनी चाहिए। जो बच्चे धाँधलीपसंद हैं या दूसरे बच्चों के साथ मेल-मिलाप से खेलना, खाना नहीं जानते, वह अपने साथियों से सर्वथा उपेक्षित होकर दुखी और उदास रहते हैं और अपनी झुँझलाहट प्रकट करने के लिए गाली-गलौज और मारपीट पर उतारू हो जाते हैं। कई बार ऐसे बच्चों को देखा है जो अच्छे बच्चों को खेलते या प्रसन्न होते देख चुपके से जाते और उन्हें मारकर भाग जाते हैं या ढकेल देते हैं। बाद में ऐसे बच्चे घर वालों को परेशान करते हैं।

जिस घर में माता-पिता में परस्पर प्रेम और सहयोग है, अन्य बच्चे तथा परिजन आपस में सहयोग और मेल से रहते हैं। घर में

व्यवस्था और शांति है, वहाँ बच्चे के चरित्र का विकास सहज रूप से होता है, परंतु घर में जब दो-अमली राज्य होता है, घर के अन्य व्यक्तियों की अनियमित दिनचर्या होती है एवं डाँवाडोल स्थिति होती है, तो इस वातावरण में बच्चों के चरित्र का विकास अधूरा रह जाना स्वाभाविक है। बच्चा अपनी सुविधा, समझ और पसंद के अनुसार ही अपने चरित्र को ढालता है। माता-पिता के स्वभाव की भिन्नता, परस्पर विरोध, पक्षपातपूर्ण व्यवहार आदि भी बच्चे को दब्बू बना देता है। कई पिता इतनी कठोरता से घर में शासन करते हैं कि उनके घर में कदम रखते ही सारे घर का वायुमण्डल घुटा-घुटा-सा हो जाता है। घर की सारी स्त्रियाँ उनके आते ही इधर-उधर कोनों में छिप जाती हैं। कोई चूँ तक नहीं बोलता। घर के अन्य प्राणियों की यह दशा देखकर बच्चे भी सहम जाते हैं। वे बिचारी माता को डरकर घर के कुसूर छिपाने के लिए बहाने गढ़ते देखते हैं। कभी-कभी उन्हें भी इसमें सहयोग देना पड़ता है। बाप के क्रोध को घर में कयामत बरसाते देख बच्चे दब्बू बन जाते हैं। वे डरे-डरे और मुरझाए-मुरझाए से रहते हैं। जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण बहुत उदासीन-सा बन जाता है और बड़े होकर भी उन पर यह उदासीनता छाई रहती है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। जन्म से लेकर मृत्यु तक उसे समाज में ही रहना होता है। समाज से भिन्न होकर उसकी दशा वैसी ही हो जाती है जैसे जल से निकली मछली की होती है। वह घर और समाज में ठीक से निभ सके, अपने सुंदर सहयोग से अपने जीवन को सुखी बनाता हुआ आस-पास भी प्रसन्नता बिखेरे इसी में उसके जीवन की सफलता है। इसी ध्येय की प्राप्ति की दृष्टि से बच्चे का चरित्र-निर्माण करना होगा। इसलिए उसमें निम्नलिखित गुण पैदा करने का बचपन से ही प्रयास करना चाहिए।

१. हमेशा प्रसन्न रहना—प्रसन्न बच्चे हमेशा स्वस्थ रहते हैं जबकि चिड़चिड़े बच्चे हमेशा रोगी ही दीखते हैं। अतएव जहाँ माता

एक ओर बच्चे के स्वास्थ्य की चिंता करती है, वहाँ इस बात की चेष्टा करे और साधन जुटाए कि बच्चे के आस-पास का वातावरण और लोग खुश-मिजाज और जिंदादिल हों। उसको हँसाएँ, खिलाएँ। हर व्यक्ति जब बच्चे को प्रसन्न दिखाई पड़ेगा, तो सबको प्रसन्न देखकर वह भी चहकने लगेगा। आस-पास की उदासी की छाप बच्चे पर झट पड़ जाती है। अगर माँ प्रसन्न होकर बच्चे को दूध पिलाती है या उसको रिझाए रखकर उसका नहलाना तथा खिलाना-पिलाना करती है, तो बच्चा भी अपने कार्यों में दिलचस्पी लेता है, वह मन और तन से उसमें सहयोग देता है, अन्यथा वह भी झुंझलाता है, जिद करता है, काम में बाधा उत्पन्न करता है और चिढ़कर माता जब उसे झकझोरती और चपतियाती है, तब वह भी अधीर होकर अपनी बदमिजाजी दिखाने लगता है। उसके उत्पातों से माता ऊब जाती है, वह दुखी होकर कहती है, "हाय ! मुझे तो इस बच्चे ने परेशान कर दिया है, कितना बुरा है। यह सँभाले नहीं सँभलता है।" कभी-कभी ऐसा होता है कि क्रोध में आकर माँ बच्चे को खूब ठोकती है। ताव में आकर वह ऐसा कर डालती है, परंतु बाद में जोश ठंडा होने पर अपने सर को पीटने लगती है, दुखी होती है। इन प्रतिकूल अवस्थाओं का प्रभाव माँ और बच्चे दोनों पर पड़ता है। माता चिड़चिड़ी और बदमिजाज हो जाती है, उसका स्वास्थ्य गिरने लगता है। वह चौबीसों घंटे चिंता में डूबी रहकर सोचा करती है। गृहस्थी के काम-काज उसे बोझ जैसा लगने लगते हैं। न तो ठीक समय से झाड़ू-बुहारी लगाना, न चौका-बरतन और न खाना बनाना बन पड़ता है। इसके लिए उसे घर भर की फटकार सुननी पड़ती है, चारों तरफ से निंदा और उपहास सुनने के कारण आपस में द्वेषभाव बढ़ते हैं। कलह प्रारंभ हो जाती है। महाभारत ठन जाता है। फिर ऐसी माताओं के बच्चे भला प्रसन्नचित्त कैसे रह सकते हैं ? सुधार की कौन कहे,

उनके चरित्र में दिन-प्रतिदिन गिरावट आने लगती है। वे माँ और पूरे घर के लिए अशांति के प्रतीक स्वरूप बन जाते हैं।

माँ की अधीरता का प्रभाव बच्चे पर ऐसा पड़ता है कि वह भी बहुत नाजुक मिजाज बन जाता है। जल्द ही अधीर हो जाता है। कभी-कभी पौष्टिक भोजन तथा शुद्ध हवा और मनोरंजन के अभाव के कारण भी बच्चा अशांत दीखने लगता है। बच्चे की 'नर्वस-सिस्टम' बड़ों से अधिक नाजुक होती है। दूसरों की जल्दबाजी तथा अधीरता का उन पर बहुत जल्द प्रभाव पड़ता है। अतएव जहाँ तक हो सके बच्चे की दिनचर्या में गड़बड़ होने न दें। उसको उत्तेजना, भीड़-भाड़ तथा शोरगुल से परे ही रखें।

२. साहस—'बच्चे को चुप कराने' अथवा कहना मनवाने के लिए कई माताएँ या आया 'काल्पनिक हौआ, जूजू अथवा भूत-प्रेत या कुत्ता, बिल्ली, भकब्बा आदि तक से डराती हैं। बच्चा कहीं रोने लगा तो चट कहने लगी, "चुप-चुप परेतवा आ रहा है, अभी पकड़ ले जाएगा, यह देखो अमुक पेड़ की डाल पर बैठा है।" कुछ समय पूर्व देहातों में चेचक का टीका लगाने वाले भी भूत-प्रेत जैसे माने जाते थे। इन्हें हथचिरवा कहते थे। बच्चे कहीं रोने लगे तो चट माँ ने कहा, अभी हथचिरवा को बुलाती हूँ, तुम्हारा हाथ चिरवा दूँगी, या वह तुम्हें ले जाएगा। ये सब बातें वैसी ही हैं जैसे कुछ माताएँ बच्चे के रात में रोने के भय से उसे अफीम की घुट्टी दे देती हैं ताकि वह रात भर पड़ा सोता रहे। कितना भयंकर इलाज है। बच्चे के जीवन के साथ खिलवाड़ करना, उसकी शक्तियों को नष्ट-भ्रष्ट करके उसे पंगु और बुद्धिहीन बना देने के ये सब तरीके हैं। इसी प्रकार भूत-प्रेत का भय दिखाकर बच्चे के अचेतन मन पर भय का आतंक जमा देने से वह सदैव-सदैव के लिए डरपोक बन जाता है। साहस आदि गुणों का उसमें अभाव-सा हो जाता है। गीताकार ने दैवी प्रवृत्तियों में अभयता को सर्वप्रथम माना है। भय समस्त पापों का मूल होता है।

भयभीत प्राणी सब कुछ निंदनीय कार्य करने में संकोच नहीं करता। फिर यही भय बचपन से ही खेल-खेल में बच्चे के अंदर भर देना, कितना पैशाचिक खिलवाड़ है, योगिनियों का नृत्य है। ऐसे भयभीत बच्चों से भला समाज के आदर्श नागरिक बनने की कल्पना कैसे की जा सकती है ?

अत: यह बहुत बुरी बात है। भय के द्वारा बच्चा उस समय चाहे आपके काबू में आ जाएगा, परंतु बाद में वह इतना डरपोक हो जाएगा कि आपके आँचल में बँधा फिरेगा। आप उसे खतरे से दूर रखें, परंतु ऐसी सावधानी भी न बरतें कि बच्चा पंगु ही बन जाए। चलते-फिरते या पालने से खेलते हुए अगर वह कभी गिर भी जाए या बीमार पड़ जाए, तो ऐसे उद्गार न प्रकट करें कि बच्चे के दिल में दहशत ही बैठ जाए या वह स्वयं को एक शहीद ही समझने लगे।

३. **नि:स्वार्थता**—बच्चा जब तक छोटा होता है, सब लोग उसका अधिक ध्यान रखते हैं, अतएव वह इसका आदी-सा हो जाता है। नन्हा-मुन्ना समझकर आप उसकी स्वार्थ वृत्ति को तरजीह देती रहती हैं। उसे स्वार्थी होने में लाभ दीखता है, नि:स्वार्थी होने में हानि दीखती है। नि:स्वार्थी होने में त्याग करना पड़ता है जो कि उसे रुचिकर नहीं लगता। ज्यों-ज्यों वह बड़ा हो उसे अपने संगी-साथियों और अड़ोस-पड़ोस के संग मिलकर अपने खिलौनों से खेलना सिखाएँ। उसके हाथ से अन्य बहन-भाइयों और साथियों को मिठाई या उपहार बँटवाएँ। छोटे-मोटे आयोजन हों, किसी दिन घर में धार्मिक आयोजन हो जैसे रामायण, कीर्तन आदि तो अपने नन्हें बच्चे को उत्साहित करें कि वह अपने मित्रों और भाइयों, बहनों को प्रसाद स्वयं दें। एक-दूसरे के दु:ख में सहानुभूति प्रदर्शन करना सिखाएँ। सुख-दुख में वे एक-दूसरे की मदद भी करें—ये सभी सामाजिक कर्तव्य बच्चा अपनी आयु और समय के अनुसार ही करेगा, अभ्यास

से वह इन कर्तव्यों को करने का आदी हो जाएगा। उससे घर के कामों में भी सहयोग लें यथा अपने छोटे कुत्ते की देखभाल, अपनी गुड़िया की अलमारी को साफ करना, अपने गेंद—बल्ले को सँभाल कर रखना, नौकर को बुला लाना, दरवाजा बंद करना, चीज पकड़ाना आदि छोटे-छोटे कार्य जब वह करे, आप उसके सहयोग की प्रशंसा करें। बच्चे को इस बात का बड़ा अभिमान होता है कि वह भी घर का एक उपयोगी प्राणी बने।

भूलकर भी अपने बच्चे को स्वार्थी और मतलबी बनने का आदेश न दें। प्रायः कुछ माँ-बाप कह बैठते हैं, "हमारा बच्चा बड़ा चलता पुर्जा है, वह अपना मतलब निकालना खूब जानता है। उसे भोंदू न समझो।" बस बच्चा इस तारीफ का लाभ उठाने में कभी नहीं चूकता। वह अपने बहन-भाइयों से और बड़े होकर माँ-बाप से भी चालाकी खेल जाता है। भले ही चाहे दूसरे का दुगना नुकसान हो जाए, चाहे किसी बेकसूर को हानि उठानी पड़े, पर मेरा कार्य बन जाए, यही बच्चे का ध्येय बन जाता है। चाहे बच्चे के कुछ साथी उसे दुनियादारी में होशियार समझें, परंतु मानवता की दृष्टि से यह वृत्ति हेय है।

४. दया और सहानुभूति—कई बच्चों को लँगड़े-लूले जानवरों या मोहताज भिखमंगों को परेशान करने में आनंद आता है। किसी पगली या अंधी बुढ़िया को सब मिलकर परेशान करते हैं। मेरे विद्यालय के कुछ छोटे छात्र निकट में ही एक धर्मशाला में रहते हैं। वहाँ एक बुढ़िया बेचारी रहती है, जो एक कोने में अपना काम किया करती है। ये बच्चे उसे प्रायः परेशान करते हैं। यहाँ तक कि रात में टार्च लेकर उसके मुँह पर लगाते हैं। उसने एक दिन हम लोगों से शिकायत की, तब उस बेचारी की जान बची। प्रायः आपने देखा होगा कि बच्चे अपनी बूढ़ी दादी को खूब परेशान करते हैं। सड़क के किनारे पड़े हुए लँगड़े कुत्ते पर

ईंट-पत्थर की बौछार करने में उन्हें मजा आता है, किसी चिड़िया का घोंसला उजाड़ने या लाचार जीव-जंतु को कुचलने को वह एक तमाशा समझते हैं। बच्चों की ऐसी वृत्ति को प्रोत्साहित न करना चाहिए। पशु-पक्षी पर दया करना अथवा किसी असहाय की मदद करना उन्हें सिखाएँ। जिन बच्चों को जानवर या पक्षी पालने का शौक होता है, वह अधिक दयालु होते हैं। महात्मा गौतम बुद्ध की बचपन की एक घटना का हाल तो प्राय: ज्ञात ही होगा। तब वे सिद्धार्थ थे और अपने चचेरे भाई के साथ खेल रहे थे। आकाश में उड़ते हंसों के झुंड पर उसने तीर मारकर एक हंस को घायल अवस्था में गिरा दिया। वह तड़पने लगा। सिद्धार्थ से न रहा गया, वे दौड़कर उसे उठा लाए और पूरी तत्परता से उसकी रक्षा की। पशु-पक्षियों के साथ दया के इसी भाव ने उन्हें आगे चलकर महात्मा गौतम बुद्ध बनाया। उन्होंने बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद कहा, "स्वयं को मुक्त कर लेना हमारा ध्येय नहीं है, जब तक संसार का एक भी प्राणी बंधन में फँसा है, मैं बार-बार जन्म लेकर उसके उद्धार का प्रयत्न करूँगा।" प्रौढ़ावस्था का तप जय घोष, बालपन के हंस-उद्धार का केवल विकसित रूप है। निर्दयी बालक बड़े होकर ऐसा नहीं कर सकते। वे तो परम स्वार्थी, महाक्रूर बन जाते हैं। दूसरों को भूखे-नंगे तड़पते देखकर उन्हें दया नहीं आती। स्वयं थाली में माल-पुआ रखकर खा रहे हों, उसमें बच भी जाएगा, परंतु सामने खड़े एक भूखे को थोड़ा भाग देने की बात वह न करेंगे। हजारों उदाहरण ऐसे मिलेंगे। एक सज्जन हमसे कहने लगे कि नेपाल राज्य में एक जमींदार है, उनके कई बाग हैं। बड़ा आम होता है आम की फसल में। एक दिन इन सज्जन को उन जमींदार के यहाँ जाने का अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने देखा कि जमींदार साहब के कोठार में कई हजार मन आम पड़ा हुआ सड़ रहा है। उन्होंने जमींदार साहब से कहा कि "इतना

आम व्यर्थ में क्यों सड़ा रहे हैं, गाँव वालों को बाँट दीजिए, बेचारे खा लेंगे।" जमींदार साहब ने उत्तर दिया, 'अरे सड़ जाने दीजिए, बाँटने का नाम न लीजिएगा। आज अगर बाँट दूंगा, तो इन सबको आदत पड़ जाएगी, तब बाग से उठाकर आम खाएँगे।" एक प्रकार से यह जमींदार साहब बड़े होशियार और दूर-अंदेश भी थे। ऐसे ही बहुतेरे लोग होते हैं, जिनके सैकड़ों मन अनाज सड़ जाता है मगर दूसरे गरीबों को बाँट देने की बात उनके मन में आती ही नहीं। अगर कोई उन्हें सुझाव भी दे तो उसका उपहास करके उसे अनुभवहीन बताएँगे।

यह सब बचपन में स्वार्थी मनोवृत्ति को प्रोत्साहन देने का परिणाम है।

दया और परोपकार की कहानियों का बच्चों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है। अगर बच्चा अपने से छोटे बहन-भाई या संगी-साथी के प्रति निष्ठुर है तो उससे पूछें और अनुभव भी करने दें कि अगर इसी प्रकार का व्यवहार उसके साथ किया जाए, तो उसे कैसा लगेगा ? इस प्रकार सोचने से उसके मन में दूसरे के प्रति दया और सहानुभूति जाग्रत् होगी। अपने माता-पिता की दया-वृत्ति का बच्चों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। गांधी जी के सत्य, अहिंसा और प्रेम की बेल को उनकी दयावान माँ ने लगाया था।

५. जीवन में उत्साह और दिलचस्पी लेना सिखाएँ—अपनी दिनचर्या, खेल-कूद, कपड़े, खिलौने, खान-पान आदि में बच्चे दिलचस्पी लें, इसके लिए उसके प्रत्येक कार्य को मनोरंजक और आकर्षक बनाएँ। "आज लल्ला नहाकर धुले कपड़े पहनेगा, आज खीर खाएँगे, नया फुटबाल जो आया है उसी से खेलेंगे, आज तो तुम अपने मित्रों को पार्टी दोगे।" इस प्रकार के उद्‌गारों से बच्चा अपने खाने-पीने तथा खेल-कूद में कुछ नवीनता और रोचकता का भास

पाकर दिनचर्या में दिलचस्पी लेता है। इसके अभाव में बच्चे सुस्त पड़ जाते हैं। उनमें प्राकृतिक सजीवता और जिंदादिली नहीं रहती। उनमें तो खिलाड़ी स्पिरिट जाग्रत् करनी चाहिए।

६. **आत्मविश्वास तथा आत्मनिर्भरता**—योग्यता होते हुए भी आत्म-विश्वास के अभाव में बच्चा यत्न नहीं करता। अपने साथियों में वह झेंपू, चिपकू और पिछड़ा हुआ रहता है। आत्मविश्वास पैदा करने के लिए प्रोत्साहन और ठीक सुझाव की आवश्यकता है। आलोचना करने और धमकाने से बच्चा प्रगति नहीं कर सकता। अगर उसका काम अधूरा रह गया हो, तो आलोचना न करें, परंतु ढंग से सुझाव दें। जैसे उसने एक गुड़िया का चित्र बनाया पर आँख या बाल बनाना भूल गया। आप कहें 'बच्चे ! गुड़िया तो ठीक बनी है, जरा इसकी आँखें और बाल भी बना दो फिर देखो कैसी अच्छी लगेगी। और हाँ, घाघरा तो पहनाओ। वाह ! वाह ! ! अब तो यह खिल उठी है। हमारा बच्चा चित्र कितना सुंदर बनाता है !' अपनी बिटिया से कहिए, "हाँ बच्ची ! तुम्हारा कमरा तो बहुत सुंदर है, पर ये बिखरे हुए खिलौने खिड़की में जरा और सजा दो, बस अब तो बहुत साफ सुथरा दीखने लगा।"

बच्चा जितना अधिक आत्म-निर्भर होगा, उसका आत्मविश्वास उतना ही बढ़ता जाएगा। प्रत्येक बच्चे में कुछ-न-कुछ गुण होते हैं, आप उनको समझें तथा बच्चे में विश्वासपूर्वक उन्नति करने का चाव पैदा करें, ताकि अन्य बालकों के साथ प्रतियोगिता में वह भी किसी गुण में अधिक चमकने का दावा कर सके। अगर कोई बच्चा रूप में श्रेष्ठ है तो वह सुघड़ाई में बाजी मार सकता है। इसी प्रकार अगर एक पढ़ाई में आगे है, तो खिलाड़ी बच्चे को खेल के मैदान में बाजी मारना सिखाएँ। यह तभी संभव है, जबकि बच्चे की योग्यता का पता चलने पर आप उसे ठीक ढंग से मार्गदर्शन करते हुए, उसमें आत्मविश्वास पैदा करें, उसे आत्मनिर्भर बना दें।

७. अगुआ बनने या नेतृत्त्व करने की योग्यता—आपने देखा होगा कि बच्चा जब चलना जानता है, अपना प्रभुत्व जमाकर खिलौना हथिया लेता है। अपने बच्चे में आगे बढ़कर नेतृत्व करने की भावना पैदा करें, उसे प्रोत्साहन दें। झेंपू और दब्बू बच्चे जीवन में हार खा जाते हैं। बच्चों को मार-पीटकर धाँधली रचाने से रोकना होगा, परंतु जहाँ अन्य बच्चे शर्म या दब्बूपन के कारण आगे आकर प्रदर्शन करने से डरते हों, वहाँ बच्चे का आगे बढ़कर या प्रतियोगिता में भाग लेना प्रशंसनीय है। बच्चे को दंभी न होने दें, पर साथ-ही-साथ उसके आत्मसम्मान को आघात न पहुँचाएँ। अपनी योग्यता को प्रदर्शन करने का प्रोत्साहन दें, हर समय किसी का पिछलग्गू बनने से बच्चे का व्यक्तित्व छिप जाता है और तरक्की रुक जाती है।

विनम्रता, शिष्टता, सुघड़ाई तथा ईमानदारी भी चरित्र-निर्माण और व्यक्तित्व के विकास में कम महत्त्व नहीं रखती। बुरे और भले काम की पहचान बच्चे छोटी उम्र में ही सीख जाते हैं। आवश्यकता केवल इस बात की है कि बच्चे को धीरता और प्यार से सब बात सिखाई जाए। भूल को इस ढंग से सुधारें कि उसको हीनता की भावना न कचौटे। उचित और प्रशंसनीय चेष्टा करने पर उसे बढ़ावा दें।

८. सद्गुणों का विकास—बच्चे में सद्गुणों का विकास हो, वे चरित्रवान बनें इसके लिए घर के वातावरण, बड़ों के उदाहरण तथा बच्चों की संगति—इन तीनों को विशेष महत्त्व देना होगा, क्योंकि ये ही बच्चे के चरित्र विकास की आधारशिला हैं। घर का वातावरण ऐसा हो जो बच्चे की रक्षा करे, उसकी सद्वृत्ति और गति को ठीक ओर मोड़े, ऐसा न हो कि उन्हें कुंठित कर दे। माता-पिता तथा गुरु

को यह बात सर्वथा याद रखनी है कि जिस तरह एक बच्चा दूसरे बच्चे से रूप, रंग, आकार और बल में भिन्न है, उसी प्रकार योग्यता, सामर्थ्य, विकास तथा कार्य करने की रफ्तार में भी वह दूसरे बच्चे से भिन्न हो सकता है। यही कारण है कि एक बच्चा छोटी आयु में ही चलना, बोलना सीख जाता है जबकि दूसरा बच्चा देर में सीख पाता है। एक बच्चा किसी बात को जल्दी समझ जाता है, तो दूसरा देर में।

बच्चे को कड़े नियमों से जकड़ने के बदले प्रेम से वश में करना अधिक कल्याणकारी है। दो बच्चों में यदि एक बच्चा कोई बुरा काम किसी सजा के डर से नहीं करता, दूसरा बच्चा बुरा काम इसीलिए नहीं करता कि वह सोचता है कि मेरे इस बुरे कार्य से मेरे माता-पिता को दु:ख होगा। इन दोनों बच्चों में दूसरा बच्चा ही अधिक प्राकृतिक और सरल है।

शरीर के विकास के साथ ही बच्चे की काम-शक्ति का भी विकास होता है। उसे माता-पिता, प्रेम, दुलार, प्रशंसा प्रिय लगती है। थोड़े समय बाद वह अपने से भिन्न लिंग (सेक्स) के रूप और गुणों की ओर आकर्षित होता है। ये सब लक्षण इस बात के द्योतक हैं कि बच्चे की काम-वृत्ति का बहुत ही स्वस्थ विकास हो रहा है। शरीर की स्वच्छता, उत्तम विचार, स्वास्थ्य की उन्नति की चेष्टा तथा आदर्श, पूजा की भावना इनके स्वस्थ-विकास में विशेष सहयोग देती हैं। अब आवश्यकता इस बात की है कि बच्चे के प्रेम तथा अनुराग को ऐसे व्यक्ति में केंद्रित किया जाए, जिसके अनुकरणीय व्यवहार से, आदर्श जीवन से, उसे अपने चरित्र की उन्नति करने की प्रेरणा मिले। यह वीर तथा आदर्श पूजा बच्चे को अपना ध्येय निर्धारित करने में बहुत सहयोग देती है।

९. घर का वातावरण—जीवन को सुखी बनाना एक कला है। इसके लिए बच्चे में सहनशीलता, कर्तव्यशीलता, नि:स्वार्थता और

सहकारिता—मिलकर काम करने की भावना का होना आवश्यक है। ये सभी गुण बच्चे माता-पिता के उदाहरण से सीखते हैं। घर, बच्चों को संसार से परिचित कराने और उनके विचारों तथा आदर्शों को गढ़ने की सबसे सुंदर पाठशाला है। इसी पाठशाला में बच्चे अनुकरण से सब सीखते हैं। बड़ों के व्यवहार का बच्चा मानो दर्पण है। अगर माता-पिता सुसंस्कारी हैं, तो बच्चा भी चरित्रवान होगा, अगर माता-पिता ही झूठ, छल, प्रपंच और ईर्ष्या के अवतार हैं, तो बच्चे भी वैसे ही निकलेंगे। विनम्रता, शीलता तथा शिष्टाचार का पाठ भी बच्चों को केवल दिखाने के लिए न पढ़ाया जाए, इन गुणों का अभ्यास तो दैनिक जीवन में होना चाहिए। बच्चे की योग्यता और सद्‌गुणों की कसौटी है उसके चरित्र की लोच, स्वभाव में सहन-शक्ति तथा धीरता। मनुष्य की जीवन-यात्रा संघर्षपूर्ण है। उसमें सद्‌गुणी ही सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

दुर्बल मनुष्य परिस्थितियों का दास बन जाता है, परंतु कर्मशील व्यक्ति परिस्थितियों से जूझकर, उन्हें गढ़ता और सँवारता हुआ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता जाता है। ऐसा मनुष्य अपने साथ दस अन्य को भी तार देता है। बच्चों में इसी योग्यता को पैदा करना सच्ची शिक्षा है और इसी से उनके चरित्र में दृढ़ता आती है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसे चार अन्य के साथ मिलकर काम करना पड़ता है। एक गुणग्राही, चरित्रवान तथा निःस्वार्थ व्यक्ति ही दूसरों का सहयोग प्राप्त कर सकता है। उसी को नेता बनने का अधिकार भी है। जिस घर में बड़ों का व्यवहार बच्चों को परस्पर सहयोग से काम करने, वर्तमान को सुंदर और सफल बनाने की चेष्टा करने तथा अनिवार्य विपत्तियों का डटकर सामना करने का पाठ पढ़ाए, वहाँ बच्चों में सद्‌गुणों का विकास होते देर नहीं लगती।

पवित्रता, स्वच्छता, व्यवस्थाप्रियता, समय पर काम करना आदि बातें भी बच्चों को बचपन से सिखाई जाएँ। अगर शिशुकाल में बच्चा साफ-सुथरे ढंग से पाला गया है, अगर उसकी दिनचर्या

नियमित रखी गई है, तो संस्कारवश बड़ा होकर भी वह सफाई और व्यवस्थाप्रिय होगा।

एक ओर जहाँ माता-पिता बच्चे के शारीरिक स्वास्थ्य की ओर सजग रहते हैं, वे उसके मानसिक स्वास्थ्य को परखने की चेष्टा नहीं करते। जिस प्रकार शारीरिक बल शारीरिक स्वास्थ्य की भित्ति पर खड़ा रहता है, उसी प्रकार चरित्र की आधारशिला मानसिक स्वास्थ्य है। वह जितना मजबूत होगा बच्चे का चरित्र भी उतना ही दृढ़ होगा और उसमें सद्‌गुणों का सुंदर विकास होगा। संतोषजनक विकास अनुकूल वातावरण पर भी निर्भर है और इस वातावरण को पैदा करने का भार माता-पिता पर है। यह तभी संभव हो सकता है जबकि माता-पिता ठीक रीति से बच्चों का पालन-पोषण करना तथा उनकी समस्याओं को मनोवैज्ञानिक ढंग से सुलझाना जानते हों। परंतु शिशु-पालन और शिशु-मनोविज्ञान की जानकारी 'थ्योरी' (सिद्धांत रूप) में सीखने से काम ही नहीं चलेगा, क्योंकि एक बच्चा दूसरे बच्चे से शारीरिक और मानसिक रूप से भिन्न हो सकता है। अतएव प्रत्येक बच्चे की समस्याओं के सुलझाने के लिए स्वतंत्र रूप से अध्ययन की आवश्यकता है और बच्चे के विकास के अनुकूल सुधार विधि अपनानी पड़ती है।

शिशु तथा मातृ-विज्ञान से हमें इस बात का सहयोग मिलता है कि हम बच्चों का ठीक ढंग से पालन-पोषण तथा अध्ययन करना सीख जाएँ। माता-पिता जब वैज्ञानिक विधि और सहज बुद्धि दोनों के आधार पर बच्चों का पालन-पोषण करें, तो बच्चों का विकास बहुत संतोषजनक हो सकता है, इसमें कोई संदेह नहीं।

बच्चा जैसे-जैसे बड़ा होता है, उसके जीवन में पिता का प्रेम और प्रोत्साहन एक विशेष महत्त्व रखने लगता है। अगर पिता एक कटु आलोचक और डाँटने वाला दरोगा न होकर बच्चों के साथ प्रेम-भाव रखने वाला और उनकी कठिनाइयों को हल करने वाला

साथी प्रमाणित हो तो उसके बच्चे की कल्पना और वीर पूजा की भावना को आधार मिल जाता है। ऐसे पिता का पुत्र अपने पिता के प्रति अगाध श्रद्धा, अटूट प्रेम तथा सम्मान की भावना रखने वाला होता है। उसकी दुष्प्रवृत्तियाँ शांत हो जाती हैं। उसे अपने जीवन से स्वाभाविक रुचि हो जाती है। छोटे-मोटे अभाव उसके विकास में कोई विशेष बाधा नहीं डालते। कन्या भी अपने पिता को आदर्श मानने लगती है।

कई बार ऐसी स्थिति आ जाती है कि बच्चे को अपने माँ या बाप दोनों से एक की अथवा दोनों की संगति से वंचित होना पड़ता है—जैसे माता के नौकरी करने पर अथवा देहांत हो जाने पर, पिता के परदेश जाने पर अथवा स्वर्गवास हो जाने पर। कभी-कभी बच्चे को किसी संबंधी के पास छोड़ना पड़ता है। ऐसी दशा में जहाँ तक हो सके बच्चे के प्रति स्नेह-भाव की पूर्ति करने की चेष्टा करनी चाहिए।

सम्मान और सद्व्यवहार

महापुरुषों का कथन है, "जैसे व्यवहार की आशा आप दूसरों से करते हैं वैसा ही व्यवहार दूसरों से करिए"। हम सभी लोगों की इच्छा यह होती है कि दूसरे लोग जब हमें पुकारें, तो आदरसूचक शब्दों के साथ पुकारें। श्री रामकुमार जी यहाँ आइए, सुनने में यह वाक्य कितना सुंदर लगता है। रामकुमार जी हम से प्रसन्न हो जाएँगे, यदि उनका जी आपके पास आने को नहीं चाहता था, तो भी मीठी बोली और आदरसूचक शब्दों के साथ संबोधन को सुनकर वे आपकी ओर खिंचेंगे। लेकिन मान लीजिए कि रामकुमार जी आपके मित्र ही हैं, मगर यदि आप 'राम शुक्ला इधर आ' कहकर उन्हें बुलाइए तो आने की चाह रखते हुए भी वे आपके पास न आएँगे और संभव है आपसे बुरा मानकर झगड़ा कर बैठें।

अपनी बोली-बानी से आदमी बड़े-बड़े काम बना लेता है, बिगड़ी बना लेता है और बड़े-बड़े संकटों से बच जाता है।

फिर दूसरों को अच्छे शब्दों से पुकारने की महिमा अपार है। यह आदत भी बच्चे को प्रारंभ से ही डालने की आवश्यकता है। आप लोग ध्यान से देखें बच्चे प्राय: अपने साथियों को 'तू' कहकर बुलाते हैं। 'रमेशवा आओ चलें खेलें।' वे ऐसा इसीलिए करते हैं क्योंकि माता-पिता शुद्ध नाम से उच्चारण करने की उपयोगिता बच्चे को नहीं समझाते और न आदत ही डालते हैं। यही बच्चे आगे बढ़कर बदज़बान बनते हैं। बदज़बानी से बड़े-बड़े झगड़े मोल लेते रहते हैं। क्या यह मालूम नहीं कि महाभारत जैसा महान युद्ध बदज़बानी के कारण ही लड़ा गया था। द्रौपदी ने इंद्रप्रस्थ में राजसूय यज्ञ संपन्न होने के बाद सभास्थल का निरीक्षण करते हुए दुर्योधन से कहा था 'अंधे के अंधे ही होते हैं' इसी वाक्य ने महाभारत खड़ा कर दिया और अगणित मनुष्यों के प्राणों का संहार करवा दिया।

यह तो प्राचीन युग की बात ठहरी। अब तो हम आएदिन ऐसे ही व्यक्तियों को देखते हैं। हमारे एक भाई साहब थे, उनकी आदत बन गई थी दूसरों को तू कहकर बुलाने की। चाहे जैसा व्यक्ति क्यों न हो, वह उसे तू कहकर ही पुकारेंगे। यद्यपि मैं उनसे छोटा था अत: मुझे 'तू' कहकर बुलाते ही थे। उनकी आवाज सुनकर उनके प्रति मेरे हृदय में बड़ा क्रोध उठता था। जी चाहता था यदि मैं इनसे जीतने वाला होता तो अभी लड़ बैठता। कभी-कभी उनका विरोध कर ही बैठता हूँ।

जो लोग दूसरों को अपमानसूचक शब्दों से संबोधित करते हैं प्राय: उन्हें दूसरों से घृणा, द्वेष, अपमान एवं उपेक्षा ही मिलती है, और मानसूचक शब्दों से दूसरों को संबोधित करने वालों को प्रेम, सम्मान और स्नेह ही मिलता है। ऐसे लोग सहज ही में बहुतों को अपने स्वजन, प्रेमी और प्रशंसक बना लेते हैं। उक्ति है कि—

तुलसी मीठे वचन से सुख उपजत चहुँओर।
वशीकरण एक मंत्र है तज दे वचन कठोर ।।

अपने बच्चों में मीठी बोली की आदत डालिए। उन्हें यह सिखाइए कि जब कभी वे दूसरों को नाम लेकर पुकारें तो उसके अंत में जी अवश्य लगावें। जैसे 'शोभाराम जी' रमेशचंद्र जी आदि। अधूरे नामों से कभी किसी को संबोधित न करें। यह नियम अपने साथियों के लिए लागू रहना चाहिए। अपने से बड़ों को कभी नाम लेकर न पुकारें। सदैव रिश्ते के शब्दों से पुकारें; चाचा, काका, दादा, मामा, ताऊ, भैय्या आदि। इसी प्रकार छोटों को, अपने से छोटी आयु वालों को बुलाना हो तो भी उनके नाम के अंत में जी अवश्य लगाइए। जैसे लल्लू जी यहाँ आइए। एक दूसरी बात है तुम और आपका संबोधन। इस छोटी-सी भूल और उपेक्षा से लोग नहीं समझते कि कितनी बड़ी क्षति उठानी पड़ती है। बच्चों में आदत डालनी चाहिए कि वे दूसरों को 'आप, कहें न कि तुम; तुम यहाँ आओ नहीं वरन् आप यहाँ आइए कहना चाहिए।

हम देखते हैं कि ग्रामीण जीवन में तो संबोधन के शब्दों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। दूसरों को तुम कहकर और गालियाँ देकर ही पुकारना फैशन अथवा बड़प्पन की निशानी समझते हैं। देहात के तथाकथित बड़े लोग नौकरों को या गाँव के पिछड़ी जाति अथवा हरिजन जाति के लोगों को बहुत ही अपमानसूचक शब्दों से पुकारते हैं। उनकी वही आदतें उनके बच्चों में पड़ती हैं। मेरे यहाँ रिश्तेदारी का एक बच्चा आया था, वह अपनी बहन, चाची, चचेरे भाइयों तथा साथियों को इतने अपमान से पुकारता था जैसे कोई बूढ़ा पुकार रहा हो। तोते की तरह टाँय-टाँय करके बोली बोलता था, स्वर से हुकुमिया भाव प्रकट होता था। यह आदत उसमें अपने माँ-बाप से पड़ी थी। माँ-बाप जैसी बोली बोलते थे उसी की नकल वह भी करता था। चूँकि उन्हें स्वयं उच्चारण दोषपूर्ण नहीं मालूम होता था

तो फिर बच्चे को बरजने की बात कैसे सोचते ? भले मानुष परिवारों में बातचीत का ढंग बड़ा ही अच्छा होता है। आप उनके बच्चों से बातें कीजिए जी प्रसन्न हो जाएगा। मजाल नहीं कि उनके मुँह से व्यर्थ या अश्लील शब्द निकलें।

गाली देना जंगलीपन—इसी प्रकार एक दूसरी बुरी लत जो बच्चों में पड़ जाती है, वह है गाली बकने की। बच्चे बड़ों की सुनकर एक-दूसरे को गाली देते रहते हैं। यह आदत भी उनमें बड़ों की देखा-देखी पड़ती है। आजकल गाली तो वेद-वाक्य ही बनता जाता है। किसी को बुलाएँगे तो बिना गाली दिए नहीं, किसी की चर्चा करेंगे तो गाली के साथ। गाय, भैंस और बैलों को भी गाली दिए बिना नहीं छोड़ते, ऐसी बुरी-बुरी गालियाँ देते हैं कि सुनने में शर्म मालूम होती है। माँ-बहनों और बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों के सामने भी अश्लील शब्दों व गालियों का उच्चारण करने में शर्म नहीं आती। समाज के अधिकांश लोग अब मर्यादाहीन और निर्लज्ज होते जा रहे हैं। गाड़ियों में आप यात्रा कीजिए, लोगों के अश्लील शब्द सुनते-सुनते जी ऊब जाएगा। प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में गाड़ीवान अपनी गाड़ियाँ हाँकते चले जा रहे हैं, आपस में बातें करते हैं, इतनी बुरी-बुरी गालियाँ सार्वजनिक रूप से बकते जाते हैं कि क्या कहा जाए। वे नहीं समझते कि ये बुरे शब्द विष के समान हैं और कितनी बड़ी क्षति समाज की बहू-बेटियों, माँ-बहनों को पहुँचाते हैं। निर्लज्जता, चरित्रहीनता, भ्रष्टाचार के कांड इसीलिए अधिक होने लगे हैं। 'आर्य' कहलाने वाली जाति की वर्तमान दशा देखकर कौन कहेगा कि हमारा प्राचीन इतिहास गौरवशाली था ?

मेरा तो यहाँ तक विचार है और आज के युग में आवश्यक है कि सार्वजनिक रूप से गाली बकने, अश्लील शब्द उच्चारण करने के विरुद्ध आचार संहिता बनाकर दंड देना सरकार का काम है। संसद एवं विधान मंडल में इसके लिए कानून बनाने चाहिए।

बच्चों के अभिभावकों को ही नहीं, वरन् समाज के हर पढ़े-लिखे अथवा अपने को भला आदमी कहलाने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि मार्ग चलते, गाड़ी में यात्रा करते, बाजार में टहलते या चौराहों पर बातचीत करते समय यदि कहीं भी किसी बच्चे को गाली बकते सुनें, तो उसे टोकें अवश्य। अपने घरों में गाली बंद कर देने का अभियान चलाया जा सकता है, दीवारों पर नाना प्रकार के पोस्टर लगे होते हैं, दवाइयों के विज्ञापनों से आजकल शहरों की दीवारें रँगी पड़ी हैं। भले और उत्साही युवक इसी प्रकार गाली के विरुद्ध, अभियान चला सकते हैं—दीवारों पर 'गाली बकना पाप है,' 'गाली बकना मानवता का अपमान है', गाली नहीं बकनी चाहिए;' गाली बकने वाले समाज के शत्रु हैं आदि वाक्य लिख देना एक सच्ची समाज-सेवा होगी। इन सब प्रयासों से जनसाधारण में चेतना उत्पन्न होती है, जनमत जागरूक होता है। प्रबल जनमत ही किसी बुराई को रोक सकता है, तभी सरकारी कानून सफल हो सकता है।

बच्चों में भातृ-भावना लाने के लिए उपर्युक्त वर्णित छोटे-छोटे उपाय देखने में तो कोई महत्त्व के नहीं प्रतीत होते, परंतु जब यह बच्चों में आदत के रूप में आ जाते हैं, तो उसकी स्वाभाविक सुंदरता में चार चाँद लगा देते हैं। यह बात अच्छी प्रकार समझ लेने की है, कि ज्ञान, उपदेश उस समय तक उपयोगी नहीं है जब तक हमारी आदतों में उनका प्रवेश न हो। अच्छी आदतें ही अच्छे व्यक्ति का निर्माण कर सकती हैं।

भ्रातृ-भावना कैसे जगाई जाए ?

समाज में जितने बच्चे हैं, वे किसी-न-किसी पाठशाला में पढ़ने जाते हैं, उन सबकी आर्थिक दशा समान नहीं हो सकती। कुछ अति अमीर घराने के होते हैं, तो बहुतेरे बच्चे ऐसे मिलेंगे जिनके माता-पिता अत्यंत गरीबी का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनको शाम

तक भरपेट भोजन मिलना भी कठिन रहता है। फिर अपने बच्चों को वे किस प्रकार अच्छे वस्त्र पहनाकर स्कूल भेज सकते हैं ?

जिस युग में हम लोग रह रहे हैं, वह स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृभाव का युग है। हमारे देश के संविधान ने अपने प्रथम अध्याय में भारत में निवास करने वाले सभी नागरिकों के लिए समानाधिकार, स्वतंत्रता एवं समान व्यवहार प्रदान करने की घोषणा की है।

तात्पर्य यह है कि सब प्राणी समान हैं, सभी ईश्वर के बंदे हैं। अत: न तो अमीर को गरीब से घृणा करनी चाहिए और न बुद्धिमान को बुद्धिहीन को नीची निगाह से देखना चाहिए; वरन् उन्हें अपने से नीचे वालों को सहयोग देकर सहानुभूति प्रदान कर अपनी शक्ति एवं संपत्ति का थोड़ा अंश देकर उन्हें भी ऊँचा उठाना कर्तव्य है। नागरिकों में ये भाव तभी जाग्रत् हो सकते हैं जब बचपन से ही उनमें गरीबों के प्रति दया, अपने साथियों के प्रति प्रेम के अंकुर का बीजारोपण किया जाए। उन्हें सिखाया जाए कि सहयोग से रहना ही जीवन जीने का सही रास्ता है। अपने साथी की हर संभव सहायता करने से अपनी सहायता होती है। बिना दिए कुछ मिलता भी नहीं है। लेना और देना दोनों इस संसार में साथ-साथ चलते हैं।

फिर बचपन से यह अंकुर कौन वपन करेगा ? उत्तर स्पष्ट है माता-पिता और विद्यालय। यही दो संस्थाएँ हैं जो हर अच्छे-बुरे भाव बच्चे में भरते हैं।

बच्चों में भ्रातृ-भावना और समानता विद्यालय और माता-पिता के सहयोग से ही लाई जा सकती है। प्राचीन काल की गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में यह बात हम देखते थे। राजा और रंक दोनों के बच्चे गुरु के आश्रम में भेज दिए जाते थे। वहाँ उनके साथ आश्रम में समान व्यवहार होता था। सांदीपन ऋषि के आश्रम में गरीब ब्राह्मण सुदामा भी शिक्षा पाता था और मथुरा के कर्मठ युवराज कृष्ण भी वहीं शिक्षा प्राप्त करने गए थे।

वस्त्रों में सादगी और समानता—स्कूल जाने वाले बच्चों को देखने से ऐसा लगता है जैसे किसी रंग-बिरंगी दुकान में विभिन्न प्रकार के गुड्डे-गुड़ियों को देखते हैं। अमीर अपने बच्चों को कीमती कपड़ों से सजाते हैं। बचपन में ही उन्हें घड़ी खरीद देते हैं। रोज कपड़ा बदलवाते हैं। गरीबों के बच्चे बेचारे फटी धोती-कुर्ता या कमीज पहनकर आते हैं। जूते उन्हें पहनने को नहीं मिलते। इसका एक दुष्परिणाम यह होता है कि कीमती कपड़े पहनने वाले बच्चे में अपने पास फटे या साधारण वस्त्र पहनने वाले की तुलना में मिथ्याभिमान के भाव जगते हैं, उसमें उच्चता और अहंकार के भाव पैदा होते हैं, वह समझने लगता है कि मैं अपने पड़ोसी की तुलना में अधिक धनवान तथा बड़ा हूँ। दूसरी ओर फटे-पुराने वस्त्र धारण करने वाले बच्चे भी अपने को निम्न स्वीकार करने लगते हैं। उनमें हीनता के भाव पैदा होने लगते हैं। आवश्यकता यह है कि विद्यालय में विद्याध्ययन करते समय सब बच्चे समान भाव से भावित हों। अहंकार विनाशकारी है और हीनता भी प्रगति में बाधक है। यही बच्चे बड़े होकर छोटे-बड़े, ऊँच-नीच, धनी-निर्धन के भेदभाव फैलाते हैं। इन्हीं के कारण समाज में हजारों प्रकार की जातीय समस्याएँ उत्पन्न होती रहती हैं।

इस ओर अमीर और गरीब दोनों प्रकार के माता-पिता के कुछ कर्तव्य हैं। अमीरों को चाहिए कि वे अपने बच्चों को सादे कपड़े पहनाकर स्कूल भेजें। इसमें उन्हीं का लाभ है। छोटे बच्चे जब घड़ी या सोने के कोई छोटे जेवर अथवा कीमती कपड़े पहनकर स्कूल या खेलने जाते हैं, तो वे समाज के धूर्त, चोर, बदमाश लोगों की निगाह में गड़ जाते हैं। थोड़े-से पैसे या वस्त्रों के लोभ में बच्चों की जान तक ले लेने में उन्हें लेशमात्र भी दया नहीं आती। बहराइच माडल स्कूल के प्रधानाध्यापक महोदय का एकलौता बच्चा सोने की छोटी-छोटी बालियाँ अपने कानों में पहने था। उन्हीं बालियों के लोभ में एक दुष्ट ने बच्चे को बहकाकर और एकांत में ले जाकर उसे मार

डाला और बालियाँ निकाल लीं। बताइए ! यह सोना, पैसा या वस्त्र बच्चे के प्राणों का घातक बना।

इसी प्रकार की घटनाएँ आएदिन हुआ करती हैं। फिर हर बुद्धिमान का फर्ज है कि बच्चों को ऐसी कीमती चीजें न पहनावें। अब तो चलन मिटता जाता है लेकिन कुछ समय पहले छोटे बच्चों के हाथों और पैरों में चाँदी के कड़े पहना दिए जाते थे। अब भी देहातों में अहीर या कुछ अन्य जातियों में इसका प्रचलन है।

समान ड्रेस से समान भाव बनने में सहायता मिलती है। शिक्षा विभाग की ओर से भी इस आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा है। इसीलिए किसी-किसी विद्यालय में, जिसमें प्रधानाचार्य उत्साही हैं, बच्चों के लिए समान वेशभूषा अनिवार्य कर दी है। यह एक अच्छी प्रथा है। सुविधानुसार वस्त्रों का चुनाव तो विद्यालय ही कर सकते हैं लेकिन जब अमीर और गरीब सब बच्चों के ड्रेस समान हो जाते हैं, तो स्कूल में एक नया जीवन दिखाई पड़ता है, बालकों में भी एकता व समानता के भाव बनते हैं। इसलिए अभिभावकों का यह कर्तव्य है कि जब जिन स्कूलों में उनके बच्चे पढ़ते हैं, वहाँ यदि समान वेशभूषा की योजना लागू की जाए तो उसमें उत्साहपूर्वक सहयोग देना चाहिए। इसके अतिरिक्त व्यय मानकर बोझ समझने का कोई कारण नहीं, फजूल में खर्च होने वाले काफी पैसों की बचत हो जाती है। जहाँ यह योजना न लागू हो वहाँ भी अभिभावकों को संबंधित अध्यापकों एवं प्रधानाचार्यों से कह कर उन्हें समान वेशभूषा का अनिवार्य नियम अपने विद्यालय में लागू करना चाहिए।

इस नियम से अमीर-गरीब दोनों को ही लाभ हो जाता है। गरीबों का यह कर्तव्य है कि कितने भी कम कीमत वाले वस्त्र वह अपने बच्चों को क्यों नहीं पहनाएँ परंतु उन्हें स्वच्छ और साफ रखने के नियम का तो वे पालन कर ही सकते हैं। इसमें तो धन नहीं श्रम की आवश्यकता है। धोबी से कपड़े न धुलाए जाकर रविवार के

अवकाश के दिन बच्चों से ही उनके कपड़े धोने के लिए कहना कोई अनुचित बात नहीं है। सप्ताह में एक दिन का अवकाश इसलिए मिलता है ताकि बच्चे अपने वस्त्रों सामान आदि सब को ठीक कर लें। बच्चों में यदि अपने कपड़े साफ करने की आदत डाल दी जाए तो यह स्वावलंबन और सफाई की दृष्टि से उपयोगी आदतें होंगी। आगे चलकर यह बच्चे कभी भी अपने छोटे बड़े किसी काम के लिए दूसरों का मुँह नहीं ताकेंगे। इसलिए माँ-बाप को छोटी-छोटी बातों से महानता का पाठ बच्चों को पढ़ाना चाहिए।

सहयोग वृत्ति का कैसे विकास हो ?

इस युग को हम यदि सहकारिता का युग कहें, तो अनुचित न होगा। चारों ओर सहकारिता की आवाज गूँज रही है। सहकारी समितियाँ, सहकारी दूकानें, सहकारी क्रय-विक्रय समिति, सहकारी खेती आदि की चर्चा आएदिन अखबारों में पढ़ने को मिलती है। सहकारिता सरकारी मशीनरी का एक विभाग ही है, जिसका बहुत बड़ा जाल सारे भारत में फैला है। इतने कर्मचारी जनता में सहकारिता का प्रचार करते हैं और सहकारी तौर पर काम करने की आदत डालने में सहयोग देते हैं। सरकार की ओर से सहकारी तौर पर खेती, व्यापार कुछ भी करने पर अनुदान या ऋण मिलता है।

यह सब इसीलिए किया जाता है, ताकि जनता में मिल-जुलकर काम करने की आदत पड़े। संगठित शक्ति ही अपना तथा राष्ट्र का कल्याण कर सकती है। अपने एक हजार वर्ष के अतीत के इतिहास की ओर यदि मुड़कर देखें, तो अपनी सारी मुसीबतों, कठिनाइयों, दुर्दिनों, अपमानों तथा पराजय से उत्पन्न समस्त प्रकार की बुराइयों का एकमात्र कारण यही दिखाई पड़ेगा कि हममें मिल-जुलकर काम करने की आदत का अभाव हो गया। स्वार्थ-भाव और व्यक्तिवाद प्रबल हो उठा। जब पृथ्वीराज पर मुहम्मद गोरी का आक्रमण हुआ तो देश के अन्य राजा तमाशा देखते थे। उनके मतानुसार गोरी का

आक्रमण केवल पृथ्वीराज पर था न कि देश पर। अंत में सारे तमाशाबीनों की भी एक-एक कर वही दशा हुई जो पृथ्वीराज की हुई थी।

आज से कुछ समय पूर्व जब कि कानून द्वारा सहकारिता फैलाने की बात नहीं थी, तब सहकारिता हमारे दिलों में थी। गाँव के लोग, बिरादरी के लोग, जाति के लोग एक-दूसरे से मिले-जुले रहते थे। बिरादरी की पंचायतें होती थीं, उनका चौधरी होता था, उसके फैसले को कोई टाल नहीं सकता था। मजिस्ट्रेट से भी अधिक अधिकार उसे प्राप्त होता था। लोग दूसरे के काम-काज को अपना समझते थे। शादी-विवाहों, शुभ अवसरों पर न्योता देने का चलन क्या उत्तम प्रकार के सहकारिता का द्योतक नहीं है ? मेरी बहन की शादी हुई, २०००) "न्योता" आ गए। इसी तरह धीरे-धीरे मुझे भी दूसरों के शादी विवाहों में न्योता देना पड़ता है।

यह सब इसलिए था कि सहकारिता हमारे दिलों में थी। उसका श्री गणेश तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में ठीक समय से ठीक आयु में होता था। संयुक्त परिवार प्रथा थी, एक-एक परिवार में पचास-पचास, साठ-साठ व्यक्ति होते थे, परिवार का एक मुखिया होता था, वह सबके दु:ख-दर्द का ख्याल रखता था, स्वयं दो बजे दातून करता था, लेकिन बच्चों को सवेरे भोजन करवाने का प्रबंध करता था। अपने लिए वह मिरजई, सलूका या बहुत हुआ तो कुरता पहनने को रखता था, परंतु घर के अन्य प्राणियों के पास काफी कपड़े रहते थे। तब चलती थी गृहस्थी और सहकारिता की अमिट छाप बच्चों पर पड़ती रहती थी। गाँव में एक छप्पर उठाना हुआ तो मुहल्ले भर को आवाज लगाई, सब पहुँच गए और मिलकर छप्पर उठा दिया। किसी का खेत बोने को पिछड़ गया तो गाँव की पचासों बैलों की जोड़ियाँ एक दिन उसके खेत में चलने लगीं। पचास हाथ

एक साथ खेत बुवाई का काम करने लगे तो फिर उसका खेत एक ही दिन में क्यों न बो जाए !

इन सारी परंपराओं, रीति-रिवाजों से बच्चा बचपन से ही प्रेरणा लेता रहता था। छप्पर उठाते समय वह भी दूर से खड़ा देखता रहता था कि मेरे काका का छप्पर सब लोग मिलकर उठा रहे हैं। आज उसके दादा अपनी बैल की जोड़ी लेकर राम आसरे भाई का खेत बोआने गए हैं, क्योंकि इस वर्ष लड़के के मर जाने के कारण उनका खेत बोने से पिछड़ गया है, बच्चे भी पीछे-पीछे जाकर राम आसरे की मेड़ों पर बैठकर भीड़-भाड़ भी देखते रहते थे और घरौंदे बनाकर खेलते भी थे। गाँव में चाहे जिसके यहाँ ब्याह वाले घर के द्वार पर बच्चों की भीड़ तीन दिन पहले इकट्ठी होनी शुरू हो जाती थी। अपने-अपने बाप, भाइयों को भी वे दौड़-दौड़कर सब काम कराते देखते थे। ब्याह के दिन एक स्थान पर न्योता चढ़ाते देखते थे, तो क्या इन सबका प्रभाव उन अबोध बालकों के हृदय पर नहीं पड़ता था ? सारे गाँव की इज्जत एक मानी जाती थी। रामखेलावन की लड़की जिस गाँव में ब्याही है, जितने लोग रामखेलावन के भाई लगते थे मजाल नहीं कि उस गाँव का पानी पीलें, जहाँ रामखेलावन भाई की लड़की ब्याही है। 'वाह ! लड़की के गाँव के कुएँ का पानी पीकर बेधरम होगें ? यह थे सहकारिता के विचार उस समय।

परंतु आज कहाँ देखने को मिलते हैं बच्चों को यह दृश्य ? फिर आदर्शानुकरण की बात कैसे संभव हो सकती है ?

सहकारिता की आदत कैसे पड़े—बचपन से जब कि बच्चा स्कूल जाने लगता है, तब आप सहकारिता की आदत उसमें डालिए। इसके लिए कुछ छोटे-छोटे उपाय ही आपको करने पड़ेंगे। कोई बहुत बड़ी योजना बनाने की आवश्यकता नहीं और न कुछ धन ही उसके लिए खर्च करना पड़ेगा। केवल आपकी सतर्कता, बुद्धि-चातुरी

और देख-रेख आपके बच्चे में सहकारिता के भाव भरने में बड़े सहायक बनेंगे। वे उपाय निम्नलिखित हैं—

(१) अपने घर के समस्त बच्चों को एक साथ बैठाकर खाना खिलाने की आदत डालिए। बच्चे सवेरे का नाश्ता, दोपहर तथा शाम का भोजन एक साथ करें, यदि किसी कारण किसी बच्चे को कहीं जाना हो तो चाहे पहले खाना खिला दीजिए, कोई हर्ज नहीं, लेकिन साधारण स्थिति में एक साथ खाने का ही नियम रखना चाहिए।

(२) सभी बच्चों को समान कपड़े पहनाइए। जिस रंग की कमीज बनवाइए, सब बच्चों के लिए बनवाइए। हो सकता है कि छोटी-बड़ी आयु के अनुपात से उनमें कुछ भेद करना पड़े, मगर वह भेद आयु के आधार पर ही होना चाहिए। लगभग समान आयु के बच्चों के लिए समान कपड़े बनवाना चाहिए।

(३) घर के समस्त बच्चे एक साथ खाएँ, एक जैसा कपड़ा पहनें तो एक साथ खेलें भी। खेल में वे अपने मुहल्ले के बच्चों का भी सहयोग ले सकते हैं। एक साथ खेलने से मित्रता बड़ी घनिष्ठ होती है। एक-दूसरे को सहयोग प्रदान करने की भावना का जागरण होता है। खेल के मित्रों की एकता अटूट होती है। यह सब लोग जानते हैं कि खेल के संगी साथी एक-दूसरे के लिए मर मिटने को तैयार हो जाते हैं। खेल-खेल में सहकारिता का सच्चा विकास होता है। समूहवाद का उदय खेल से ही होता है। प्रायः मुहल्ले और घरों में झगड़े-झंझट भी बच्चों को निमित्त बनाकर होते हैं, उसी प्रकार घर और परिवार में एकता भी बच्चों को निमित्त बनाकर लाई जा सकती है।

परिवार के सब बच्चे यदि एक साथ खेलें, मुहल्ले के बच्चे उनके साथी बनें तो फिर एक-दूसरे के यहाँ से आना-जाना शुरू हो जाएगा। बिना सोहन को बुलाए लल्लू खेलने जाएगा ही नहीं। अगर सोहन को चलने में कुछ देर है, वह अभी कपड़े पहन रहा है, तो लल्लू

उसके घर जाकर बैठा रहेगा, प्रतीक्षा करेगा और जब सोहन तैयार हो जाएगा तब दोनों साथ-साथ चलेंगे। बच्चों के प्रेम और एकता के अटूट संबंध के सामने बड़ों के बैर-भाव भी तिरोहित होने लगते हैं। मान लीजिए कि मुहल्ले के दो परिवारों में आपस में दुश्मनी चल रही है, मुकदमेबाजी भी ठनी है, लेकिन दोनों के यहाँ के बच्चे एक साथ खेलने जाते हैं, पढ़ने जाते हैं तो उन सबका एक-दूसरे के यहाँ आना-जाना शुरू हो जाएगा। तब यदि माँ अपने बच्चे को फल खाने के लिए दे रही है, उसी जगह पड़ोसी का बच्चा भी बैठा है, वह अपनी साथी को खेलने के लिए बुलाने आया है, तो कठोर हृदय माँ भी उस बच्चे को थोड़ा फल अवश्य खाने को देगी। इस प्रकार थोड़ी-थोड़ी बातों से प्रेम-भाव जगेगा और दोनों परिवारों के दिलों में नरमी आनी शुरू होगी। वे सोचने लगेंगे कि यार बेकार में झगड़े कर रहे हैं, आपस में मिलकर रहना चाहिए। चार दिन की जिंदगी में सबसे बैर सिर पर क्यों लादें ? दोनों ओर से उठी हुई यह चाह दो परिवारों को मिला देगी।

(४) संकट या कष्ट के समय क्रियात्मक सहयोग एवं सहानुभूति प्रदर्शन करना चाहिए। जो बच्चे घर में एक साथ खाने, एक जैसा कपड़ा पहनने एवं एक साथ खेलने की आदत डालेंगे, वही विद्यालय में भी अपनी कक्षा और स्कूल के बच्चों के साथ मिलकर काम कर सकेंगे।

अब प्रश्न आता है 'सहयोग भावना' को क्रियात्मक रूप देने का, जब बच्चों में सच्चा प्रेम पैदा हो जाता है, तो 'सहयोग' की प्रवृत्ति अपने आप जाग्रत् हो जाती है, लेकिन माता-पिता को भी प्रेरित करते रहना चाहिए। अपने बच्चे की कक्षा में जो पास-पड़ोस के बच्चे पढ़ते हैं, उनसे थोड़ी-बहुत जानकारी तो माता-पिता और परिवार वालों को हो ही जाती है, फिर यदि बच्चे का सहपाठी बीमार पड़े, तो उसकी सूचना मिलते ही माँ-बाप को अपने बच्चे को उसे देखने जाने के लिए अवश्य भेजना चाहिए। बच्चा अपने सहपाठी की बीमारी की

अवस्था देखने जाए और उसके किनारे बैठकर घुल-मिलकर बातें भी करें। अस्वस्थ सहपाठी की सेवा-सुश्रूषा में उसके माता-पिता का हाथ भी बटावें।

पारस्परिक सेवा का धर्म-कर्तव्य—मान लीजिए सभी बच्चे स्कूल से वापस लौट रहे हैं, सड़क के किनारे पर किसी रिक्शे या ताँगे से टकराकर किसी बच्चे को गहरी चोट आ गई है, तो अन्य सभी बच्चों का यह नैतिक कर्तव्य हो जाता है कि वे उसे तुरंत प्राथमिक सहायता पहुँचाकर उसे अस्पताल में ले जाएँ और उसके माता-पिता को भी सूचित करें। उस समय यदि घायल बच्चे को ले जाने आदि में कुछ पैसे खर्च करने पड़ें, तो सब बच्चों को स्वेच्छा से सहयोग करना चाहिए। यदि कभी ऐसी घटना घटे और आपका बच्चा अपने सहपाठी की प्राथमिक सहायता हेतु व्यस्त रहने, उसे अस्पताल ले जाने आदि कार्यों में फँस जाने के कारण देर से घर लौटे तो सही उत्तर जान लेने के बाद माता-पिता को बच्चे के देर से वापस लौटने पर बिगड़ना या नाराज होना नहीं चाहिए। ऐसा तो स्वार्थी प्रकृति वाले ही करते हैं। उस समय अभिभावकों को बच्चों के कार्य की प्रशंसा भी करनी चाहिए।

यदि ऐसे अवसरों पर आप केवल बच्चे को उत्साहित कर देंगे, उनके कार्यों के प्रति अपनी स्वीकृति दे देंगे, तो यह निर्विवाद सत्य है कि उनकी सहयोग भावना का समुचित विकास होता चला जाएगा। लेकिन यदि कहीं मूर्खता या स्वार्थवश अपने बच्चे को झिड़क दिया कि 'तुम्हें तो चोट नहीं लगी थी, तुम क्यों देर से आए, अस्पताल क्यों गए ? रास्ते में कुछ हो जाता तो ? स्कूल से छुट्टी पाते ही सीधे घर आया करो, इधर-उधर के झंझटों में फँसने की जरूरत नहीं है आदि कहकर आप बच्चे की उठती कली को मसल दे रहे हैं तो वे निश्चयात्मक रूप से स्वार्थी प्रकृति के बनते चले जाएँगे, उनकी जीवन-दिशा बदल जाएगी। ऐसे ही बच्चे बड़े होकर स्वार्थी और मतलबपरस्त होते हैं। उनको दूसरों के दुःख-दर्द से कोई

लगाव नहीं होता, उनका हृदय गरीबों की अवस्था से द्रवित होना जानता ही नहीं। ऐसे उदाहरण हजारों की संख्या में देखे जा सकते हैं। कई आदमी साथ-साथ बाजार घूम रहे हैं, स्वयं दूकान पर मीठा मोल लेकर खा लिया, अपने साथियों को पूछने की कोई आवश्यकता नहीं समझी। दरवाजे पर बैठे खाने-पीने का बहुत-सा सामान रखे खा रहे हैं, चाहे थाली में बच जाए, उसे कुत्ते खालें मगर एक अपंग बेचारा द्वार पर आवाज लगा रहा है, उसे हाथ उठाकर एक रोटी देना उचित नहीं समझेंगे। ऐसे ही स्वार्थी लोग मुनाफाखोर, जखीराबाज आदि गुणों से विभूषित होते हैं। यह समाज के कान वाले बहरे, आँख वाले अंधे और जबान वाले गूँगे होते हैं।

हृदयहीन स्वार्थपरता—चारों ओर मतलब परस्तों को देखकर आश्चर्य होता है। एक सज्जन ऐसे ही नेपाल स्टेट के एक जमींदार साहब की कहानी सुना रहे थे। वे बताते थे कि आम की फसल में मैंने जाकर देखा तो उनके कोठार में १०,००० आम पड़ा सड़ रहा था। यह सज्जन उस जमींदार की प्रशंसा में ये बाते कर रहे थे कि वह बहुत बड़ा जमींदार था। दस हजार आमों के पड़े सड़ते रहने की बात सुनकर मैंने कहा कि जमींदार साहब इन आमों को अपने गाँव वालों में क्यों नहीं बँटवा देते क्योंकि सड़ने से अच्छा तो यह है कि वे लोग जिन बेचारों के यहाँ आम की फसल नहीं है, खाने को पा जाते। इसका बढ़िया उत्तर उन्होंने दिया जो मुझे आज तक याद है। उन्होंने बताया कि जमींदार साहब उन आमों को इसलिए नहीं बटवाते क्योंकि इससे उनके गाँव के लोगों में आम खाने की आदत पड़ जाएगी। जब उन्हें नहीं मिलेगा, तो बाग से चोरी से तोड़कर खाएँगे।' आप सोचेंगे, कितना सुंदर उत्तर है। ये जमींदार साहब बचपन के वही बच्चे हैं जिनमें इनके माता-पिता ने सहयोग एवं दया भावना को प्रोत्साहित नहीं किया। इसी प्रकार कई जमींदारों के यहाँ मैंने खुद देखा है कि पचास मन मकई बखार में पड़े-पड़े सड़ जाती है, तब वे उसे कूड़े में फिंकवा देते हैं। यह वही अन्न है जिसके लिए

न जाने कितने लोग अपने बच्चों को भूखे रखकर सो जाते हैं। मनुष्य जब स्वार्थी हो जाता है, तो वह पशुतुल्य हो जाता है, उसे किसी प्रकार का नीच काम करने में कोई हिचक नहीं होती।

'सहयोग-भावना' ही मनुष्यता की पहचान है। जिस व्यक्ति में यह भावना जितने अंश में विद्यमान है, वह व्यक्ति उतने ही अंशों में महान है। अपने बच्चों के स्वभाव का सूक्ष्म निरीक्षण माँ-बाप को करते रहना चाहिए। सहयोग के उपर्युक्त वर्णित अवसर आने पर उनमें हाथ बँटाने के लिए बच्चे को उत्साहित भी करना चाहिए और समय मिलने पर बच्चे को उपदेश भी देना चाहिए।

कृतज्ञता ज्ञापन एवं सहानुभूति—यह एक अच्छी आदत है। यदि कोई बच्चा आपके बच्चे को किसी प्रकार का सहयोग प्रदान करता है, तो उस समय 'धन्यवाद' कहकर उस सहयोग के प्रति आभार प्रदर्शन करने की आदत भी आप अपने बच्चे में डालें। आप उसे सिखावें कि जब कोई कुछ वस्तु उसे दे, तो लेते समय 'धन्यवाद' अवश्य कहें। यदि कोई बड़ा, जैसे आपका निजी रिश्तेदार या अधिकारी आपके बच्चे को कोई वस्तु, मिठाई अथवा फल देता है, तो लेते समय आपको बच्चे को बता देना चाहिए कि वह वस्तु लेकर 'नमस्ते' अवश्य करे तथा धन्यवाद कहकर आभार प्रदर्शन करे।

वाणी द्वारा भावों का प्रदर्शन होता है। दूसरी बात आती है बीमारी या कष्ट के समय सहानुभूति प्रदर्शन की। क्रियात्मक सहयोग तो करना ही चाहिए लेकिन पीड़ित सहपाठी के पास जाते ही शब्दों द्वारा सहानुभूति प्रकट करना भी आवश्यक है। "भैय्या ! तुम्हारी बीमारी से मुझे बड़ा दुःख है, क्या करूँ ? यदि वश चलता तो तुम्हारी आधी बीमारी मैं बाँट लेता, तुम्हें ईश्वर शीघ्र अच्छा कर देगा, घबराने की बात नहीं है, यह तो फसली बुखार है, आजकल बहुत-से लोगों को हो जाता है।" इस प्रकार के शब्द कहकर आपके बच्चे अपने पीड़ित साथी का मन बहलावें। शब्द समय पर बंदूक और तोप से ज्यादा काम करते हैं, शब्द विज्ञान की महिमा अपरंपार है।

आप विश्वास करें कि कष्ट के समय कहे गए यह छोटे वाक्य रोगी बच्चे का आधा दु:ख दूर कर देंगे और यह भी बात है कि वह आपके बच्चे का सच्चा साथी बन जाएगा। उसकी मित्रता जीवन भर के लिए स्थायी बन जाएगी। संसार में सच्चे मित्रों की अत्यधिक आवश्यकता है, सच्चे मित्र प्राण देकर अपने मित्र की रक्षा करते हैं।

दूसरों का हृदय जीतना—समय पर सहयोग की कितनी महिमा होती है, इसका एक सच्चा उदाहरण मेरा ही सुनिए—

मैं पूर्व माध्यमिक विद्यालय का छात्र था। बात तभी की है। मेरे एक मास्टर साहब थे। कभी-कभी मैं उनके यहाँ जाया करता था जैसा कि सभी बच्चे अपने शिक्षकों के यहाँ जाते हैं। उनका एक बच्चा था, उसे भी हम प्यार से कभी-कभी खिलाया करते थे। एक दिन अचानक वह बीमार पड़ा। जब मुझे सूचना मिली, तो मैं भी उनके यहाँ गया। मास्टर साहब बेचारे दौड़-दौड़कर हर प्रकार का प्रयत्न कर रहे थे। मैंने भी उनकी दौड़-धूप में हाथ बटाया। जब उस बच्चे की तबिअत सुधरते नहीं देखी, तो वे उसे एक दूसरे डॉक्टर के यहाँ ले गए। बच्चे को कै और दस्त बराबर आ रहे थे। थोड़ी दूर ले जाने के बाद उनसे बच्चे को लेकर मैंने अपनी गोद में लिटा लिया और ले गया। दवा हुई, लेकिन बच्चे को कोई लाभ न हुआ। दूसरे दिन उसकी मृत्यु हो गई। बच्चे की मृत्यु से माँ-बाप को कष्ट होना स्वाभाविक था। करीब दो सप्ताह तक मास्टर साहब तथा उनकी पत्नी शोक-संतप्त रहे। मास्टर साहब कई दिनों तक स्कूल नहीं गए। लेकिन यह सब समाप्त हुआ और थोड़े समय बाद वह अपना सब कार्य नियमित रूप से करने लगे। शोक के समय तक तो मैं उनके घर बराबर नित्य जाया करता था, जब वे अपने दैनिक कार्य में लग गए तो मैंने उनके घर जाने की कोई आवश्यकता नहीं समझी।

वे ट्यूशन पढ़ाते थे अपने घर पर ही। किसी बच्चे से २०) मासिक से कम नहीं लेते थे। एक दिन उन्होंने एक लड़के को भेजकर मुझे बुलवाया। सायंकाल जब मैं उनके यहाँ पहुँचा तो वे मीठे शब्दों

में झिड़ककर कहने लगे कि कई दिनों से तुम आए क्यों नहीं ? स्पष्ट उत्तर न देकर मैंने यही कहा कि मास्टर साहब छात्रावास से अवकाश नहीं मिला इसलिए नहीं आया, कोई काम होता तो समय निकालकर चला आता। उन्होंने कहा कि नहीं तुम नित्यप्रति आया करो और "सुनो ! यह गोपाल (एक सेठ का लड़का था जो उन्हीं के पास ट्यूशन पढ़ता था, मेरी कक्षा में ही पढ़ता था।) मेरे पास जिस समय पढ़ने आता है, उसी समय तुम भी आया करो और साथ ही पढ़ा करो। मैंने समझा कि २०) मासिक देने की तो मेरी स्थिति नहीं है, फिर पढ़ने जाना उचित नहीं है। कोई स्पष्ट उत्तर तो मैंने उन्हें नहीं दिया लेकिन पढ़ने नहीं गया। दूसरे दिन गोपाल से, मास्टर साहब ने मेरे न आने का कारण पूछा तो गोपाल ने वही ट्यूशन वाली बात बताई। जब मास्टर साहब स्कूल में आए, तो अपने खाली घंटे में मुझे बुलाया। एकांत में बहुत प्रकार से समझाया कि तुम से ट्यूशन फीस नहीं लूँगा।तुम तो मेरे अपने बच्चे के समान हो, इसलिए नित्य पढ़ने अवश्य आया करो। यदि नहीं आओगे तो तुम्हें सजा दूँगा। कुछ संकोच के साथ मैंने जाना आरंभ किया और फिर जब तक वे उस स्कूल में रहे, मुझे बराबर पढ़ाते रहे, विशेषता यह कि ट्यूशन देने वालों की तुलना में मुझ पर सदैव अधिक ध्यान देते रहे। मेरा उनके परिवार से घनिष्ठ संबंध जुड़ गया। हमारे मार्ग में धर्म-भेद बाधक न बना। मैं उनके घर 'सीतापुर' तक गया।

आप सोचें कि समय पर की गई सहयोग वृत्ति कितनी गुणकारी होती है। मैंने उन मास्टर साहब से जितना लाभ उठाया उतना कई सौ रुपये खर्च करके भी नहीं उठा सकता था।

इसी प्रकार प्रत्येक जीवन में ऐसे प्रसंग आते हैं जब प्रयत्न से बड़े-बड़े लाभ उठाने का अवसर सामने आता है। चतुर बालक उनसे लाभ उठा लेता है और मूर्ख मुँह ताकता रह जाता है।

ईश-प्रार्थना—घर पर भी नित्य सामूहिक प्रार्थना करनी चाहिए। पाठशाला में पाठ प्रारंभ होने के साथ प्रार्थना होती है,

लेकिन अधिकांश स्कूलों में उसको वह महत्त्व नहीं दिया जाता जो कि दिया जाना चाहिए। इस कारण प्रार्थना एक प्रदर्शन मात्र रह जाती है। भावनाहीन एवं श्रद्धाहीन मन से की गई प्रार्थना का समुचित प्रभाव बच्चों पर नहीं पड़ता। बचपन से ही आप बच्चों के हृदय में आस्तिकता जगावें। सामूहिक पूजा-पद्धति का प्रसार करें। आपके घर के जितने बच्चे हैं, उनके साथ पास-पड़ोस के बच्चों को भी शामिल होने का अवसर आप दे सकते हैं। एक समय निश्चित कर दें। मेरा विचार है कि सांयकाल ६-७ बजे का समय उत्तम रहेगा, जब बच्चे खा-पीकर पढ़ना प्रारंभ करें। सब बच्चे खड़े होकर कोई सामूहिक प्रार्थना करें, तत्पश्चात् पढ़ना प्रारंभ करें। एक बच्चा कहलवाए और शेष उसके बाद कहें।

यह एक अच्छी आदत रहेगी। इसका प्रभाव कई दृष्टियों से बच्चों पर पड़ेगा। प्रथम तो उनमें आस्तिकता के भाव जागेंगे, दूसरे एक सबसे प्रत्यक्ष आप यह देखेंगे कि उनमें अनुशासन अपने आप आ जाएगा। उद्दंड एवं नटखट बच्चे भी प्रार्थना के प्रभाव से धीरे-धीरे सीधे होने लगेंगे। तीसरा लाभ यह होगा कि सभी बच्चे एकता के सूत्र में बँधने लगेंगे। उनमें सहयोग भावना एवं सहकारिता पैदा होगी।

इस प्रकार आप कुछ उपायों द्वारा अपने बच्चों में मानव जीवन के वे महान गुण उत्पन्न करने में सफल हो जाएँगे, जिनके सहारे यह संसार टिका हुआ है। सहयोग और सहकारिता जिस दिन संसार से उठ जाएँगे उसी दिन संसार छिन्न-भिन्न हो जाएगा। प्रलय की अवस्था आ जाएगी। आदमी-आदमी के खून का प्यासा बन जाएगा, किसी का भी विकास नहीं हो पाएगा।

अत: बच्चों में आप इस गुण को उत्पन्न करने के लिए बड़ी चातुरी से प्रयास करें।

अंत में अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन के शब्द सहयोग भावना की महत्ता प्रकट करने के लिए लिखने उचित होंगे।

उन्होंने कहा है—"मनुष्य को परमात्मा ने समर्थ और बुद्धिमान अवश्य बनाया है। पर एक त्रुटि भी उसमें रखी है, वह यह है कि परस्पर सहयोग के बिना उसकी कोई भी विशेषता मूर्तिमान नहीं हो सकती। अन्य जीवों के बच्चे जन्म लेने के उपरांत बहुत स्वल्प काल तक माता का सहयोग लेते हैं, तत्पश्चात् वह स्वतंत्र, स्वावलंबी जीवन व्यतीत करने लगते हैं। मनुष्य को यह स्थिति जीवन के अंत तक प्राप्त नहीं होती। उसे अपनी छोटी-बड़ी सभी आवश्यकताओं के लिए दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। क्या कोई मनुष्य ऐसा है, जिसने बिना दूसरों की सहायता के अपने लिए अन्न, वस्त्र, मकान, पुस्तक, मनोरंजन, परिवार, वाहन आदि के साधन स्वयं निर्मित करके अपना काम चलाया हो। उसे पग-पग पर दूसरों की सहायता अपेक्षित होती है और इसे जो जितनी मात्रा में प्राप्त कर लेता है, वह उतना ही सफल कहलाता है।"

'बौद्धिक, चारित्रिक एवं सामाजिक प्रगति के लिए भी मनुष्य को पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता होती है। मिल-जुलकर मनुष्य ने अब तक इतनी प्रगति की है। यदि उसे अधिक शक्ति और अधिक प्रगति की आवश्यकता है, तो इसके लिए परस्पर अधिक स्नेह सहयोग के साधन उसे जुटाने ही पड़ेंगे।"

बच्चों को व्यवहार-कुशल बनाइए

बच्चों को व्यवहार-कुशल बनाने के लिए उनमें उत्तरदायित्व की भावना का विकास करना बहुत आवश्यक है। जिन बच्चों में उत्तरदायित्व का भाव जग जाता है, वे हर काम बड़ी होशियारी से करते हैं। हर समय इस बात का ध्यान रखते हैं कि उनसे कोई काम बिगड़ न जाए। उन पर कोई उँगली न उठा सके अथवा किसी समय वे उपहासास्पद न बन जाएँ।

व्यवहार-कुशलता का सीधा-सा अर्थ है, कोई ऐसी बात या कोई ऐसा काम न करना जिससे किसी को कोई तकलीफ पहुँचे अथवा वे आलोचना या उपहास के पात्र बन सकें।

यद्यपि सारे क्षेत्र में किसी का पूर्णरूपेण कुशल हो सकना असंभव के समकक्ष जैसी बात है, तथापि समाज में साधारण व्यवहार-कुशलता प्राप्त कर लेना सबके लिए सुसाध्य एवं आवश्यक है, जो सामान्य सामाजिक व्यवहार में कुशल नहीं होते वे अंदर से अच्छे होते हुए भी समाज में उचित स्थान नहीं पा सकते। लोग उनके विषय में यह कहकर आलोचना किया करते हैं कि 'अमुक व्यक्ति हो सकता है अंदर से अच्छा हो किंतु व्यवहार से अच्छा प्रतीत नहीं होता' और समाज में इस प्रकार की धारणा लोगों को उसके प्रति शंकालु ही बनाए रखती है।

समाज में 'विनिमय, वार्त्तालाप एवं संबंध, यह तीन ऐसी बातें हैं जिनकी पृष्ठभूमि पर ही सारे सामाजिक व्यवहार आधारित रहते हैं। इन तीन बातों को ठीक से व्यवहार कर सकने की योग्यता प्राप्त कर लेना ही व्यवहार-दक्षता है।

विनिमय का अर्थ है, आदान-प्रदान अथवा लेन-देन। जो पैसे का, वस्तु का, भावनाओं का अथवा विचारों का हो सकता है। विनिमय के व्यवहार में जहाँ तक हो सके सीमांत स्पष्टता एवं ईमानदारी रखनी चाहिए। जैसे कोई वस्तु खरीदते समय अपनी चतुरता अथवा हीलोहुज्जत से दूकानदार को साधारण भाव से कम कीमत देने का प्रयत्न न करना चाहिए। क्योंकि इससे दूकानदार अपना नुकसान तो करेगा नहीं, उल्टे अच्छा ग्राहक न समझकर ऐसे व्यक्ति के हाथ कोई चीज बेचना पसंद न करेगा। यदि एक बार वह ग्राहक बनाने के लिए दब भी जाएगा, तो दूसरी बार एक के दो पैसे वसूल कर लेगा और सबसे पहले घटिया चीज भिड़ाने की कोशिश करेगा। बार-बार ऐसा करने वाले व्यक्ति की साख ग्राहक के रूप में

बाजार में कम हो जाती है और हजारों रुपये का सामान खरीदने पर भी वह आदर नहीं पा पाता जो उसे मिलना चाहिए।

अब रही कोई चीज बेचने की बात। कोई वस्तु बेचते समय सामान्य भाव से अधिक पैसे लेने के लिए बढ़ा-चढ़ाकर मूल्य बतलाना, घटिया चीज भिड़ाना या असंतोषजनक ढंग से विक्रय करने वाले की दूकानदार के रूप में साख खराब हो जाती है और वह एक बड़ा दूकानदार होने पर भी न तो अपेक्षित बड़प्पन पा सकता है और न अधिक समय तक अपनी स्थिति बनाए रख पाता है। धीरे-धीरे ग्राहक संख्या कम करता हुआ छोटा-सा दूकानदार रह जाता है।

इसी प्रकार पैसा लेने-देने में समय और परिणाम में यथासंभव हेर-फेर करने का प्रयत्न न करना चाहिए। और यदि किसी भ्रम, भूल या परिस्थितिवश ऐसा हो जाए या करना पड़े तो ईमानदारी से उसका स्पष्टीकरण करने में संकोच न करना चाहिए।

वार्त्तालाप में सत्यता, शिष्टता एवं देशकाल का विचार रखना चाहिए। सत्य यदि शिष्ट नहीं है अथवा शिष्टता, सत्यता से परे है या यह दो बातें देश-काल के अनुकूल नहीं हैं, तो अनुचित ही मानी जाएँगी।

संबंध मूलतः छोटे, समान, बड़े, पद, योग्यता एवं विशेषता के अनुसार छह प्रकार के होते हैं। जो जिस योग्य हो उससे उसी प्रकार का व्यवहार अपेक्षित है। इसके प्रतिकूल व्यवहार करना किसी भी दशा में ठीक नहीं है। जो जिस योग्य है उसको उसके अनुरूप स्थान देना बहुत बड़ी व्यवहार-कुशलता है। छोटों से स्नेहिल, समानों से निस्संकोच और बड़ों से आदरपूर्वक वार्त्तालाप करना चाहिए। पद में बड़े और आयु में छोटे व्यक्ति भी आदर और अदब के अधिकारी होते हैं। अपने से अधिक योग्यता अथवा किसी क्षेत्र में विशेषता (जैसे कला आदि) रखने वाले व्यक्ति भी अपने से बड़े अथवा उच्च पद पर न होते हुए भी सम्मान एवं सद्व्यवहार के पात्र होते हैं। उनसे

व्यवहार करने में इन बातों का ध्यान रखना केवल आवश्यक ही नहीं, अपितु अनिवार्य भी है।

इस प्रकार इन व्यवहार संबंधी आवश्यक बातों की शिक्षा देते हुए बच्चों का पालन किया जाए, तो कोई कारण नहीं कि वे व्यवहार-कुशल न बन जाएँ। प्रारंभ से ही बच्चों में इसकी चेतना का विकास किया जाना चाहिए, जिससे वे स्वतंत्र व्यवहार करने की आयु तक पहुँचते-पहुँचते दक्षता प्राप्त कर लेंगे। जिन बच्चों में इन बातों का विकास प्रारंभ से नहीं किया जाएगा, वे बच्चे उस आयु तक आवश्यक दक्षता प्राप्त न कर सकेंगे, जिसमें पहुँचकर उनका कोई भी व्यवहार महत्त्व रखता है और अच्छा या बुरा माना जा सकता है।

इस प्रकार जो बच्चे, विनिमय, वार्त्तालाप और संबंध के ज्ञान से परिपूर्ण कर दिए जाते हैं, वे निस्संदेह व्यवहार-कुशल और समाज में अच्छे नागरिक बनकर अपना निश्चित स्थान प्राप्त कर लेते हैं।

विशेष रुचियाँ और शौक

१२ वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते बच्चों में विशेष प्रकार की रुचियाँ और शौक जाग्रत् हो जाते हैं। उनका ध्यान रखना बच्चे के विकास में सहायक होता है।

अधिकांश माता-पिता प्रायः दो प्रकार के होते हैं—एक तो वे जो हरदम यह रोना रोया करते हैं—"मेरा बच्चा तो एक क्षण के लिए भी पुस्तक को आँखों से हटाता नहीं" और दूसरे वे जो अपने बच्चों के न पढ़ने के कारण चिंतित रहते हैं।

यहाँ पर उन बच्चों का विचार कर रहे हैं, जो इन दोनों प्रकार के बच्चों के बीच के होते हैं। इस प्रकार बच्चे आगे चलकर पढ़ने वाले हो भी सकते हैं और नहीं भी, यह बहुत कुछ इस पर भी निर्भर है कि हम उनको कैसी शिक्षा देते हैं ? पढ़ने वाले बच्चों से अर्थ है कि वे बच्चे जो अखबारों में छपने वाले हास्य चित्रों, पत्रिकाओं के

चित्रों के शीर्षकों और विभिन्न समाचारपत्रों में छपने वाली संक्षिप्त परंतु क्रमहीन और तर्क रहित जानकारी के अतिरिक्त भी कुछ पढ़ते हों।

८ या १० वर्ष की अवस्था से पहले बच्चे यह नहीं सोचते कि वे क्या पढ़ें ? उस समय तक वे वही चीजें पढ़ते हैं जो उनके माता-पिता और शिक्षक उनको देते हैं। इस अवस्था तक पहुँचकर वे सरल पुस्तकें पूरी तरह पढ़ने लगते हैं और उनमें अपने स्कूल की तथा अपने मुहल्ले के पुस्तकालय का प्रयोग करने की क्षमता आ जाती है। ९ वर्ष की अवस्था के लगभग पुस्तकों के संबंध में लड़कों और लड़कियों की रुचियाँ भिन्न होने लगती हैं बिलकुल उसी प्रकार वे अलग-अलग मार्गों पर चलने लगते हैं।

पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्ति साहित्य—लड़कों की अपेक्षा लड़कियाँ ज्यादा पुस्तकें पढ़ती हैं। यह शायद केवल इस बात का प्रमाण है कि बच्चों को सक्रिय खेलों में अधिक रुचि होती है। परंतु लड़के, लड़कियों से ज्यादा पत्रिकाएँ पढ़ते हैं। जासूसी कहानियों की पत्रिकाओं के अतिरिक्त वे विज्ञान तथा यंत्रशास्त्र संबंधी पत्रिकाएँ भी पढ़ते हैं।

इस बात से माता-पिता को यह समझना चाहिए कि यदि वे अपने बच्चों में किसी निश्चित रचनात्मक कामों में अपना मन लगाने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करना चाहते हैं, तो वे उनको इस प्रकार की पत्रिकाएँ लाकर दें।

लड़के और लड़कियाँ किसी विशेष प्रकार की पुस्तकों को ज्यादा पसंद करने लगते हैं, परंतु इसका अर्थ यह नहीं होता कि ये पुस्तकें जितनी ज्यादा बिकती हैं 'सचमुच उतनी ही अच्छी होती हैं।' इसका अर्थ केवल यह होता है कि वे सस्ती होती हैं, इनको पढ़ने में कोई कठिनाई नहीं होती और उनको प्राप्त करना बच्चों के लिए सरल होता है, क्योंकि दूसरे बच्चों के पास भी बहुत-सी होती हैं। बच्चे

उनको उसी कारण चाहते हैं, जिस कारण वे हास्य चित्रों में क्रमवत कही गई कहानियों को पसंद करते हैं, जिनमें वही पात्र बार-बार आते रहते हैं। उनकी साहित्यिक शैली कैसी भी हो, पर कहानी हमेशा रोचक होती है। यह भी उन पुस्तकों की लोकप्रियता का एक कारण होता है।

स्कूल शिक्षा के प्रारंभिक वर्षों में हमारा उद्देश्य यह होता है कि बच्चों का मनोरंजक हो इसलिए ये पुस्तक मालाएँ काफी लाभदायक होती हैं, परंतु यह लाभ बहुत सीमित और अल्पकालिक होता है। बच्चों को इस प्रकार की किताबें जो वास्तव में शक्कर में लिपटी हुई कड़वी दवा की गोलियों के समान होती हैं—पढ़ने से रोकने के साथ उनको ऐसी पुस्तकें दी जानी चाहिए, जिनके साहित्यिक मूल्य के बारे में किसी को भी संदेह न हो। ऐसा करने से उनको जो पाठ्य-भोजन मिलेगा, उसमें शैली और रोचकता के अतिरिक्त उपयोगी तथ्य भी होगा। यदि बच्चों की पहुँच अच्छे प्रकार की चुनी हुई पुस्तकों की ओर हो जाए, तो वे आसानी से पढ़ना सीख लेने के बाद ऐसी पुस्तकों को पढ़ने में ज्यादा समय व्यय न करेंगे, जिनका कोई वास्तविक महत्त्व नहीं होता।

९, १० और ११ वर्ष के बच्चे अपने खाली समय का बहुत बड़ा भाग हास्य-चित्रों द्वारा वर्णन की जाने वाली कहानियों को पढ़ने में बिताते हैं, पर पुस्तकों में या समाचारपत्रों में, जहाँ इस प्रकार की पुस्तकें काफी प्रचलित हैं, लड़के और लड़कियाँ इनको उतना ही महत्त्व देते हैं, जितना अपने भोजन को।

हास्य रस की पुस्तकों की इस तरह की असीम-लोकप्रियता का रहस्य क्या है और इनका बच्चों पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

बच्चे जिस प्रकार के जीवन की इच्छा रखते हैं, उनकी अपेक्षा उनका जीवन बहुत सीमित होता है। अपने परिवार के तथा अपने पास-पड़ोस के नियमबद्ध दैनिक जीवन से उनको जो कुछ प्राप्त होता है, वे उससे भी अन्य प्रकार के और अधिक साहसमय अनुभवों के

इच्छुक होते हैं। हास्य-चित्रों की कहानियों में उनको यह सब कुछ मिल जाता है जो वास्तविक जीवन में नहीं मिलता। इन कहानियों में अत्यंत विचित्र घटनाएँ भरी रहती हैं। बच्चे इन कहानियों के साहसी और बहादुर नायक के रूप में अपने आपको देखने लगते व वास्तविक जीवन के बंधनों से मुक्त हो जाते हैं। जिस प्रकार बड़े लोग 'पलायन' के लिए जासूसी और रहस्यमय उपन्यास पढ़ते हैं, उसी प्रकार बच्चे भी अपने जीवन की अरोचकता से भागकर इन हास्य-चित्रों की रोमांचकारी कहानियों में भाग लेते हैं।

यदि हम बच्चों को जीवन की कठिनाइयों का सामना करने का अवसर दें; यदि हम उनको कठिन काम करना सीखने के प्रयत्नों से न रोकें और यदि हम उनको उचित ढंग के उत्साहमय और साहसमय कामों को करने का अधिक अवसर दें, तो वे इन कल्पित संकटमय परिस्थितियों और साहस की कहानियों में आनंद लेना कम कर सकते हैं।

हास्य-चित्रों की कहानियों में कुछ अच्छी बातें भी होती हैं। बच्चा जब इनको पढ़ता है, तो कई नए शब्दों से, कभी-कभी सैकड़ों नए शब्दों से परिचय होता है। पांचवी या छठी कक्षा में पढ़ने वाले बच्चे इन कहानियों को आसनी से समझ सकते हैं। संभव है कि इन कहानियों को पढ़कर अपेक्षतः छोटे बच्चे अपनी पढ़ने की क्षमता भी बढ़ाते हों। इसके साथ ही इन कहानियों को पढ़कर, वे अनेक नए शब्दों को सीखते ही हैं। इस प्रकार की कहानियाँ उनकी कल्पना-शक्ति को बढ़ाती हैं और उनमें शब्दों तथा विचारों को मंत्र मुग्ध करने की शक्ति के प्रति एक रुचि पैदा करती हैं।

परंतु इन चित्र कथाओं की पुस्तकों में जो भोंड़े चित्र बने होते हैं, उनसे बच्चों में विकसित होती हुई सौंदर्य को परखने की क्षमता को हानि होती है। इस बात को तो शायद लोग अधिक महत्त्व न देते हों लेकिन इन पुस्तकों में हिंसा, पाप और अपराध का जो चित्रण होता

है, उसका बच्चों पर क्या प्रभाव है, इसे तो लोगों को महत्त्व देना चाहिए। मनोविज्ञान के कई श्रेष्ठ विशेषज्ञों ने इस बात पर चिंता प्रकट की है कि बहुत-से बच्चों के व्यवहार में इन्हीं चित्र कथाओं से सीखी हुई बातों का प्रतिबिंब मिलता है।

प्रतिदिन क्रूरता और अश्लीलता के इन चित्रों को देखने से बच्चों की भावनाएँ कठोर तो बनती ही हैं। साथ-ही-साथ जब इन चित्रों में किसी विशेष जाति या किसी राष्ट्र के विरुद्ध निरंतर व्यंग्यात्मक आक्रमण किए जाते हैं या जब इनमें किन्हीं विशेष लोगों को केवल इसलिए तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता है कि वे 'नीचे' काम करते हैं, तब बच्चों की भावनाओं में धीरे-धीरे गुप्त ढंग से इसका बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। जब हास्य-चित्रों में परिवार के जीवन का बहुत भद्दे और पिटे हुए ढंग से चित्रण किया जाता है। सास-बहू के झगड़े, घर की आपस में मार-पीट आदि, तो बच्चों पर बहुत हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

इन चित्र कथाओं की पुस्तकों में सुधार की आवश्यकता है। इसके बारे में माता-पिता को सबसे अधिक ध्यान देना चाहिए। यदि माता-पिता मिलकर प्रभाव डालें, तो वे बहुत कुछ कर सकते हैं और माता-पिता के संयुक्त प्रयत्नों से बहुधा इस प्रकार की पुस्तकों में कुछ अच्छे परिवर्तन हुए भी हैं। परंतु माता-पिता का प्रयत्न यह होना चाहिए कि वे बच्चों का ध्यान ऐसी दूसरी चीजों की ओर आकृष्ट करें, जिनमें बच्चे दूसरों के अनुभव से सीखने पर अवलंबित रहना कम कर दें। जिन बच्चों को साहसमय कामों में भाग लेने की इच्छा को पूरा करने का अवसर मिलता है, जो अपना समय ऐसे कामों में व्यतीत कर सकते हैं, जिनसे संतोष प्राप्त हो, उनके पास इन हास्य-चित्रों की कहानियों के लिए बहुत ही थोड़ा समय खाली बचता है। १२ वर्ष की अवस्था को पहुँचने तक इनकी रुचियाँ इतनी विस्तृत हो जाती हैं कि वीरों की साहसमय कथाओं के लिए और किसी कला

को सीखने तथा किसी को बनाने का ढंग सिखाने वाली पुस्तकों के लिए वे बहुत उत्सुक रहने लगते हैं।

हास्य-चित्रों में वर्णन की हुई कहानियों की असंख्य पुस्तकें हर वर्ष बिकती हैं, जिनसे यह पता चलता है कि इन पुस्तकों से बच्चों को कुछ संतुष्टि तो मिलती है और साथ ही बच्चों में जो एक आक्रमणकारी प्रवृत्ति छिपी रहती है, उसे सांत्वना मिलती है। कोई भी निश्चित रूप से नहीं बता सकता कि हमारे समाज में ऐसी कौन-सी बात है, जिसके कारण बच्चों को मनोरंजन के इस ढंग का अवलंबन लेना पड़ता है। एक कारण तो यह हो सकता है कि माता-पिता या तो अपने काम में व्यस्त रहते हैं या वे बचपन के संसार से इतना दूर होते हैं कि वे बच्चों की विफलता को रोकने की ओर ध्यान नहीं देते।

पढ़ने का महत्त्व तो कम नहीं परंतु यह सदैव द्वितीय श्रेणी का अनुभव होता है। यह वास्तविक महत्त्व की चीज के अभाव की पूर्ति मात्र होती है या हद से हद उस वास्तविक अनुभव की ओर प्रारंभिक कदम होता है। अधिकांश बड़े लोग दूसरों की यात्राओं का वर्णन पढ़ने की अपेक्षा स्वयं यात्रा करना अधिक पसंद करते हैं। इसी आधार पर यह बात भी कही जा सकती है कि जो बच्चे पढ़ते नहीं हैं, वे ज्यादा अच्छे रहते हैं बशर्ते कि वे वास्तविक अनुभव प्राप्त कर रहे हों। चीजें बनाना सीख रहे हों, जानवरों से खेल रहे हों, प्रकृति के रहस्यों का पता लगा रहे हों, नई-नई जगहों की सैर करके नई-नई चीजों से परिचित हो रहे हों—केवल पुस्तकों में पढ़कर ही विभिन्न अनुभवों को न प्राप्त कर रहे हों।

इसमें संदेह नहीं कि एक समय ऐसा आता है, जब बच्चे को अधिक मनोरंजन के लिए वास्तविक अनुभव से लाभ उठाने के लिए पढ़ना आवश्यक हो जाता है। विज्ञान के सरल-से-सरल प्रयोगों के लिए भी पढ़ना आवश्यक हो जाता है। जो लड़के और लड़कियाँ

कहीं सैर पर कई दिन के लिए जाते हैं, वे यह पढ़ना चाहते हैं कि दूसरे लोगों ने इन्हीं परिस्थितियों में अपनी समस्याओं को किस प्रकार हल किया है ?

प्राय: हम सभी लोगों को यह जानने की उत्सुकता होती है कि संसार में जो महान व्यक्ति हुए हैं, उन्होंने महानता का मार्ग कैसे ढूँढ़ा और प्राय: सभी महान व्यक्तियों की जीवनी में एक ही बात बार-बार पढ़कर हम बहुत ही प्रभावित होते हैं कि वे अपने बचपन में जो कुछ हाथ लगता था पढ़ डालते थे। "पुस्तकों को पढ़ने की इस तीव्र भूख को उनकी 'महानता' का कारण कहा जाए या नहीं। इससे एक बात की ओर हमारा ध्यान अवश्य आकर्षित होता है कि यदि हम बच्चों को शुरू से ही अच्छे पढ़ने की चीजें उपलब्ध न करें, तो उनके पढ़ने के दिनों का बहुत-सा बहुमूल्य समय व्यर्थ नष्ट होता है। आजकल बहुत-सी अच्छी-अच्छी पुस्तकें सस्ते मूल्य में मिल जाती हैं और सरकार की ओर से देश के कोने-कोने में पुस्तकालय भी खुल रहे हैं, तब कोई कारण नहीं कि हम अपने बच्चों को पुस्तकों के अगाध भंडारों से परिचित न करा सकें।

साथ ही हमको यह भी नहीं भूलना चाहिए कि बच्चों की पढ़ाई को विशेष दिशा में संचालित करना भी बहुत जरूरी है। इस बात को दृष्टि में रखते हुए कि लड़के और लड़कियाँ किस प्रकार की चीजें पढ़ते हैं, संचालन की आवश्यकता लड़कों की अपेक्षा लड़कियों के लिए अधिक होती है।

९ या १० वर्ष की अवस्था में जब लड़कियाँ घर और स्कूल के जीवन से संबंधित कहानियों में और लड़के साहसपूर्ण वीर गाथाओं में दिलचस्पी लेने लगते हैं, उसी समय से यदि उनकी पढ़ाई का उचित संचालन न किया जाए, तो संभव है कि उनकी रुचियों का क्षेत्र इतना सीमित हो जाएगा कि उनका मानसिक विकास घुटकर रह जाएगा। वे बच्चे जिन्होंने बचपन से केवल एक ही प्रकार की पुस्तकें

पढ़ी हैं, संभव है कि वे बड़े होकर भी अपनी पढ़ाई को ऊपरी सफलताओं के वर्णन, जासूसी उपन्यास तथा 'सर्वप्रिय' प्रेम कथाओं तक सीमित रखें ।

माता-पिता बहुत लंबी-चौड़ी आदर्श योजनाएँ बनाए बिना भी इस दशा को बदलने के लिए बहुत कुछ कर सकते हैं । बच्चों को अच्छी किताबें सुनाकर, परिवार के लोगों में आपस में बहस करके, उनके प्रेमी अतिथियों की बातचीत को सुनने का अवसर देकर तथा फिल्मों की अपेक्षा अच्छी पुस्तकों पर अधिक पैसा खर्च करके, बहुत से माता-पिता अपने बच्चों की और लड़कों-लड़कियों की भी रुचियों को इस प्रकार विकसित कर सकते हैं कि यही बच्चे आगे चलकर प्रभावशाली बन सकें और अपने जमाने में सारे वातावरण को हिला दें ।

रुचियाँ और शौक—१० वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते बहुत-से बच्चों को छोटे-छोटे औजारों के प्रयोग में बहुत दिलचस्पी हो जाती है । स्पष्ट है कि यदि उनको इस अवस्था तक इन औजारों को छूने का भी कभी अवसर नहीं मिला है, तो वे कभी उतने होशियार नहीं हो सकते जितने कि वे बच्चे होते हैं, जिनकी ४ या ५ वर्ष की अवस्था से ही इस प्रकार के औजारों को प्रयोग करने की आदत है । फोटो खींचना, नाटक खेलना, किसी बाजे पर गाने, बिजली के यंत्रों में दिलचस्पी होना—ये सब और इसी प्रकार की कई और चीजें बच्चे की पसंद होती हैं, विशेष रूप से प्रतिभाशाली बच्चों को ।

बहुधा माता-पिता सोचते हैं कि बच्चों को ऐसे शौकों को जैसे फोटो खींचना या संगीत सीखना आदि जिन पर बहुत पैसा खर्च होता है, प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए । परंतु यह बात भी विचारणीय है कि हमें युग के साथ चलना है और बच्चे को जिस चीज का भी शौक होता है, उसके द्वारा वह बहुत कुछ सीखता है और इसमें वह अपनी

पूरी शक्ति से प्रयत्न करता है। जिस लड़के को कोई बाजा बजाने का शौक है, वह संभव है अपनी इसी निपुणता के द्वारा हाईस्कूल या कॉलेज की परीक्षाएँ अच्छे अंकों से पास करे। यदि किसी लड़की को वृक्षों और लताओं के निरीक्षण में रुचि है, तो संभव है कि वही विज्ञान की किसी नवीन खोज में अपनी प्रतिभा को प्रदर्शित करने में सफल हो।

परंतु किसी ऐसे काम में पैसा लगाना, जिसके बारे में कोई अनुभव न हो, निश्चय ही मूर्खता होगी, क्योंकि यह नहीं मालूम हो सकता कि बच्चे को उस चीज में किस सीमा तक रुचि है या उस काम को संपन्न करने की उसमें कितनी योग्यता है ? कुछ परिवार अपनी पुत्री को नृत्य सिखाने में सैकड़ों रुपये खर्च कर देते हैं, परंतु बाद में उनको पता चलता है कि उन्होंने अच्छा नहीं किया। परंतु बच्चे को किसी चीज में निश्चित रूप से लगन है और दृढ़ता से उस पर जमा रहता है, तो वह उसे सीखने हेतु सामान प्राप्त करने के लिए, दूसरी चीजों का बलिदान करने के लिए भी तैयार रहेगा।

बच्चों की रुचियों का बहुत बड़ा महत्त्व इस बात में है कि इनके द्वारा बच्चों को एक साधन मिलता है, जिससे वे दूसरों का सम्मान प्राप्त कर सकें और अपनी निपुणता पर गर्व कर सकें। यदि बच्चा अपनी स्कूल की पढ़ाई में केवल औसत दर्जे का विद्यार्थी है, तो इस बात की विशेष आवश्यकता है कि उसे उस काम में प्रोत्साहित किया जाए, जो वह अच्छी तरह कर सकता है। ऐसे बच्चे जिनमें कोई निपुणता नहीं होती, जिसके कारण वे अपने आपको महत्त्वपूर्ण समझ सकें, माता-पिता और शिक्षक दोनों को प्रयत्न करके ऐसे मार्ग ढूँढ़ने चाहिए, जिनमें बच्चे अपनी योग्यता का परिचय दे सकें। नक्शे खींचने में बहुत निपुण हो जाना या किसी एक विषय में अत्यधिक जानकारी प्राप्त कर लेना आदि। कुछ ऐसी बातें हैं जिनका प्रोत्साहन करना चाहिए, ताकि बच्चे का मानसिक स्वास्थ्य बन सके।

बच्चों की जिज्ञासाएँ और उनका समाधान

बच्चे किस प्रकार के प्रश्न किस अवस्था में पूछते हैं, इससे यह पता चलता है कि उनमें विचारों का विकास कैसे होता है ? प्राय: तीसरे वर्ष की अवस्था से ही बच्चे अपने निकट की वस्तुओं और घटनाओं के संबंध में भाँति-भाँति के प्रश्न पूछने लगते हैं। कुछ प्रश्न तो बच्चे अपनी ओर केवल दूसरों के ध्यान को आकर्षित करने के लिए करते हैं। उनके कुछ प्रश्न सच्ची जिज्ञासा को शांत करने के लिए होते रहते हैं, जिससे वे अपने अनुभवों के अर्थ को ठीक-ठीक समझ सकें। जब तक इन प्रश्नों द्वारा उसकी जिज्ञासा शांत न होगी, तब तक वह विभिन्न प्रश्नों को पूछता रहेगा। हरलाक कहता है कि प्रश्न करने का काल तीसरे वर्ष से प्रारंभ होकर प्राय: छठे वर्ष तक चलता है।

बच्चों के भाषा-विकास के अध्ययन से उनके प्रश्नों के स्वरूप अथवा प्रत्यय का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। 'रग' ने अपने अध्ययन में देखा कि किंडर गार्टन के बच्चों की बातों का दस प्रतिशत प्रश्न थे। फिशर ने नर्सरी स्कूल के बच्चों के अपने अध्ययन में देखा कि १$\frac{१}{२}$ से २ वर्ष के लगभग उनकी बातों में दो प्रतिशत प्रश्न थे, परंतु तीसरे वर्ष की अवस्था पर उनका प्रतिशत १५ हो गया।

मनोवैज्ञानिकों के लिए अभी तक यह जानना संभव नहीं हो सका है कि विभिन्न विकासावस्था पर बच्चों को किन-किन साधारण बातों का ज्ञान रहता है ? अत: किसी भी उम्र के लिए अभी तक इस संबंध में कोई प्रतिमान नहीं निश्चित किया जा सका है। इसका कारण यह भी हो सका है कि बच्चे विभिन्न वातावरण से आते हैं और उनके अनुभवों में बड़ा अंतर होता है।

दिशा और दूरी का ज्ञान बच्चे अपने आप नहीं सीख पाते। किसी दूरी का अनुमान करने के लिए वह उसकी उस परिचित वस्तु और व्यक्ति से तुलना करते हैं, जिसे बहुधा तय किया करते हैं। स्थान, दिशा और दूरी के अनुमान के लिए वे दृष्टि संबंधी तथा गति संबंधी संवेदनाओं का सहारा लेते हैं। जब बच्चा रेंगना प्रारंभ करता है, तभी से वह अनुभव करने लगता है। जब वह गाड़ी, तीन पहिये की साइकिल तथा गेंद इत्यादि से खेलना प्रारंभ कर देता है, तो दूरी और दिशा का उसका ज्ञान कुछ शुद्धतर होने लगता है। जिस लंबी दूरी को बालक तय नहीं कर सकता, उसके संबंध में वह अंधकार में ही रहता है। स्कूल में स्केल, गज, फीट और इंच से दूरी और बाँट से तौल नापने से उसे स्थान और दूरी को समझने में अथवा प्रत्यय पाने में बड़ी सहायता मिलती है।

बच्चे ज्यों ही बातचीत करने की कुछ योग्यता प्राप्त कर लेते हैं, वे कुछ संख्याओं को भी गिनने लगते हैं। यह ठीक-ठीक कहना कठिन है कि संख्या के प्रयोग की योग्यता उनमें कब प्रारंभ होती है, परंतु दूसरे या तीसरे वर्ष से वे कुछ संख्याओं के नाम अवश्य लेते हैं। किंडर गार्टन के साढ़े चार वर्ष की अवस्था के बच्चों के अध्ययन से 'इगलस' को ज्ञात हुआ कि उनमें कुछ में संख्याओं के प्रयोग करने की योग्यता है। एक कार्ड पर कुछ बिंदुओं को बनाकर उनसे उनकी संख्या पूछी गई। यह देखा गया कि इस उम्र में बच्चों का १ और २ का ठीक-ठीक ज्ञान है, ३ का ज्ञान नहीं है, ४ का ज्ञान काम चलाऊ है और ५ से १० तक का संख्या का उनका ज्ञान बहुत ही अस्पष्ट था। बड़े बच्चे बड़ी संख्याओं का प्रयोग अधिक कुशलता से करते थे और छोटों को इसमें कुछ कठिनाई होती थी। इगलस ने निष्कर्ष निकाला है कि बच्चों का संख्या प्रत्यय उनकी उम्र तथा शिक्षण के अनुसार बढ़ता है।

छोटे बच्चों में समय की अवधि को समझने की योग्यता बड़े ही धीरे-धीरे विकसित होती है। यदि कुछ काम करता है तो उसके

लिए यह कहना बड़ा कठिन होता है कि वह कितने समय तक करता रहा। जब किसी काम को वह बड़े मन से करता है, तो उसे जान पड़ता है कि समय बड़ी जल्दी बीत गया और जब बेकार रहता है तो समय जल्दी बीतते नहीं जान पड़ता। स्कूल में पहुँचने में देर करना तथा किसी पूर्व निश्चय के अनुसार किसी स्थान पर ठीक समय से न पहुँचना उसके समय की अवधि को समझाने की असमर्थता का द्योतक है। सुबह की क्रियाशीलताएँ शाम से भिन्न होती हैं। दिन में कुछ और काम किया जाता है और रात को कुछ और ही। इसलिए लगभग $२\frac{१}{२}$ या ३ वर्ष का बच्चा सुबह और शाम अथवा दिन और रात के भेद को समझ सकता है। चार वर्ष के बच्चे प्रायः यह बतला सकते हैं कि आज मंगल है या बुधवार, परंतु महीने या ऋतु का ज्ञान उन्हें एक साल बाद ही आता है।

बच्चों को आकार और स्वरूप का ज्ञान जल्दी होता है क्योंकि संदूक, खिलौना, बिस्तर, मेज तथा कुर्सी इत्यादि वस्तुओं के अंतर को समझने में उन्हें देर नहीं लगती। तीसरे वर्ष की उम्र में बच्चे इन सबके अंतर को समझने लगते हैं। विभिन्न परीक्षणों से यह स्पष्ट होता है कि उम्र और अनुभव के बढ़ने के साथ आकार और स्वरूप को समझ सकने की योग्यता बच्चों में बढ़ती रहती है।

दूसरों को समझने से पूर्व बच्चा अपने को कुछ समझ लेता है। अपने विषय में जो वह प्रत्यय बनाता है, उसी के अनुसार वह दूसरों को समझने का प्रयत्न करता है। दर्पण में देखने तथा अपने हाथ से विभिन्न अंगों को छूने से वह अपने शरीर के विभिन्न अंगों को समझता है। उसकी यह क्रिया चौथे से पाँचवें महीने से ही प्रारंभ हो जाती है।

बच्चे को अपने में बड़ी रुचि होती है। इसलिए अपने विषय में उसके प्रत्यय का विकास बड़ा शीघ्र आरंभ हो जाता है।

बच्चे प्राय: अपने आत्मप्रत्यय के विकास में दो प्रकार के प्रत्ययों का विकास करते हैं। एक प्रकार का प्रत्यय तो बाह्य व्यक्तियों के संपर्क के प्रभावस्वरूप विकसित होता है। जब बालक स्कूल जाना प्रारंभ करता है, तो उसके 'आत्मा' का दूसरा स्वरूप विकसित होता है। यह स्वरूप उसके विचारों, भावनाओं और संवेगात्मक अनुभवों पर आधारित रहता है। इन दोनों प्रकार के 'आत्मा' का वह एकीकरण नहीं कर पाता। अत: वह अपने को बहुधा दो व्यक्तित्व वाला व्यक्ति समझता है। किशोर अवस्था में पहुँचने में उसके 'आत्मा' के ये दोनों स्वरूप आपस में मिल जाते हैं। तब बच्चे एक समन्वित व्यक्ति की तरह व्यवहार दिखलाने में समर्थ होते हैं।

दूसरों का व्यवहार तथा संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं के निरीक्षण से व्यक्ति में सामाजिक प्रत्यय आता है। ध्वनि का प्रत्यय बच्चा बहुत पहले ही कर लेता है। आवाज से ही वह परिचित अथवा अपरिचित अथवा प्रेम भरी आवाज की पहचान वह एक वर्ष की उम्र में प्राय: करने लगता है।

अन्वेषणों के आधार पर 'व्यूहलर' का कहना है कि तीन महीने की उम्र में बच्चे को क्रोध अथवा प्रेम भरे शब्दों की पहचान नहीं रहती। वह दोनों को समान समझता है। पाँच महीने की अवस्था में वह क्रोध के भाव को समझने लगता है। जब कोई व्यक्ति उससे क्रोध दिखलाता है, तो वह रोने लगता है। उसकी धारणा है कि आठवें महीने पर बच्चा दूसरों के चेहरे के भाव को समझने में समर्थ होता है।

अच्छे वातावरण के बच्चों का साधारण वातावरण के बच्चों की अपेक्षा सामाजिक प्रत्यय अच्छा होता है। व्यक्ति के सौंदर्य की भावना उसके विभिन्न संबंधों पर निर्भर करती है। सुखद भावना के पाने पर वह सोचता है कि संबंधित व्यक्ति या वस्तुएँ सुंदर हैं और

दु:खद भावना पाने पर उन्हें वह असुंदर मानता है। वस्तुत: न कोई वस्तु अपने में सुंदर है और न असुंदर, उसे सुंदर अथवा असुंदर मानना तो अनुभव करने वाले व्यक्ति के तात्कालिक भाव पर निर्भर करता है। बच्चा जिसे पसंद करता है, उसे वह सुंदर मानता है, और जिसे वह पसंद नहीं करता, उसे वह असुंदर कहता है। जिन व्यक्तियों को वह चाहता है, उसे वह सुंदर ही समझता है, चाहे वह दूसरों की दृष्टि में असुंदर ही क्यों न हो ! इस बात की पुष्टि 'टरमन' द्वारा निर्धारित प्रश्नावली से होती है। जब पाँच वर्ष के बच्चे को कुछ स्त्रियों के चित्र दिखलाए गए, तो उन्होंने सुंदरतम के स्थान पर सबसे भद्दे चित्रों को पसंद किया। पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया कि ये चित्र उसकी 'दादी' की तरह लगते हैं अथवा 'आया' के समान हैं।

गहरे रंग के चित्र जिनमें व्यक्तियों अथवा मशीन की गतियों का चित्रण रहता है, बच्चों को अच्छे लगते हैं। कोई चित्र जिसमें लोग कुछ काम करते हुए चित्रित रहते हैं बच्चों को बड़े ही अच्छे लगते हैं। प्राकृतिक दृश्य बच्चों को तब तक अच्छे नहीं लगते जब तक उनमें कुछ क्रियाशील व्यक्तियों का अथवा पशुओं का चित्रण न हो।

बच्चा किस वस्तु को सुंदर मानेगा और किसे असुंदर—यह उसके सांस्कृतिक वातावरण पर भी कुछ हद तक निर्भर करता है। प्रौढ़ व्यक्तियों के साथ रहने के कारण बच्चे प्राय: सौंदर्य संबंधी उन्हीं की भावनाओं को अपना लेते हैं। अपने लिए अच्छा न समझते हुए ऐसी स्थिति में बालक उन वस्तुओं को सुंदर मान बैठता है, जिन्हें प्रौढ़ लोग सुंदर मानते हैं। जिसे माता-पिता या शिक्षक सुंदर मानते हैं, उन्हें बच्चे भी सुंदर मान बैठते हैं। ज्यों-ज्यों बच्चे बड़े होते हैं, वे प्रौढ़ों के सौंदर्य संबंधी मापदंड को स्वीकार करने लगते हैं।

प्राय: यह सबका अनुभव है कि एक छोटा शिशु भी संगीत को पसंद करता है। जब धीरे-धीरे गाया या गुनगुनाया जाता है, तो उसे नींद आ जाती है। एक वर्ष की अवस्था के पूर्व संगीत सुनने की रुचि

बच्चों में स्पष्टत: देखी जाती है। यदि बच्चे को कहीं कुछ कष्ट हो रहा हो तो संगीत की ध्वनि से उसे कुछ शांत किया जा सकता है। बच्चे को लिए बड़ी अच्छी लगती है और वातावरण के अनुसार उसमें एक विशिष्ट प्रकार के स्वर के लिए रुचि भी उत्पन्न हो जाती है। तीन वर्ष की अवस्था पर बच्चा प्राय: यह कह देता है कि वह कौन-सा गाना या ग्रामोफोन का रिकार्ड सुनना पसंद करेगा। अपने प्रिय गाने को बच्चा जितनी बार सुनता है, वह गाना उसके लिए उतना ही प्रिय बन जाता है। संगीत की रसानुभूति के लिए उसके अर्थ को भी समझना आवश्यक है। छह या सात वर्ष की अवस्था में बच्चे स्वर की गहनता और ऊँचाई को कुछ-कुछ समझ सकते हैं। दूसरों के स्वर को सुनने से उसकी गहनता और ऊँचाई का वे कुछ हद तक अनुकरण भी करते हैं।

बच्चे के संगी-साथी

मनुष्य समाजबद्ध प्राणी है। अपने समाज से ख्याति तथा लोकप्रियता प्राप्त करने के लिए न केवल बड़े ही परंतु बच्चे भी उत्सुक रहते हैं। अगर यह कहा जाए कि बड़ों से बच्चे अधिक स्वाभाविक रूप से सामाजिक जीव हैं, तो अत्युक्ति न होगी। मनुष्य जब जीवन से ऊब जाता है, उसमें जब असहनशीलता तथा स्वार्थता जाग्रत् हो जाती है तो जीवन संघर्ष से घबराकर वह थकान अनुभव करने लगता है। तब उसे एकाकीपन अधिक भाता है। वह समाज से, अपने मित्रों से, सगे-संबंधियों से मुँह चुराता है। जिससे उसका स्वार्थ नहीं सधता, उससे मिलने में उसे कुछ आनंद नहीं आता। ऐसे मित्रों से वह कुछ बहानेबाजी करके छुटकारा पाने की चेष्टा करता है। 'कह दो कि घर पर नहीं है' या ओ हो, बड़े भाग्य से दर्शन हुए, क्षमा करें, समय नहीं मिला, नहीं तो मैं खुद ही हाजिर होता' आदि उद्‌गार प्रकट कर वह मुँह देखे की प्रीति निभाने की चेष्टा करता है।

बड़ों की मित्रता में शिष्टाचार को ही अधिक महत्त्व दिया जाता है, परंतु बच्चों की मित्रता में सहज प्रेम और स्वाभाविकता अधिक होती है। वे अपने अड़ोस-पड़ोस, सहपाठी तथा कम उम्र के संगी-साथियों में सहज ही हिल-मिल जाते हैं। उनकी मित्रता भी सोद्देश्य ही होती है। एक साथ खेलने और एक ही स्कूल में पढ़ने वाले तथा एक ही पड़ोस में रहने वाले बच्चों में परस्पर घनिष्ठता जल्द हो जाती है। एक-सी रुचि रखने वाले बच्चे किसी रुचिकर काम को करते समय एक गुट बना लेते हैं। जैसे—क्रिकेट के खिलाड़ी, फुटबाल के प्रेमी, बागवानी या ललित कलाओं में दिलचस्पी रखने वाले बच्चे, उद्देश्य की सादृश्यता देखकर ही एक-दूसरे की संगति को पसंद करते हैं। परिवारों की घनिष्ठता भी बच्चों को एक-दूसरों के परिवारों में मित्रता स्थापित करने में सहयोग देती है।

गरीब और अमीर बच्चों की मित्रता—बच्चों में ऊँच-नीच आदि का भेद नहीं होता है। मैंने देखा है कि अफसरों के बच्चे अपने चपरासी के बच्चों के संग खेलने में संकोच नहीं करते। इस प्रकार की मित्रता से दोनों बच्चों को लाभ होता है। गरीब का बच्चा साफ-सुथरा तथा शिष्ट बनने की चेष्टा करता है; अमीर का बच्चा गरीबों के बच्चों के संग रह कर जीवन के अभावों से परिचित होता है और तुलनात्मक रूप से अपने जीवन की सुविधाओं का मूल्य समझने लगता है। स्नेह तथा दयावश वह गरीब मित्रों की सहायता करना सीख जाता है। वह अपने पुराने कपड़े, खिलौने, पुस्तकें यहाँ तक कि पाकेट मनी में से भी कुछ देकर उनके अभावों को दूर करने की चेष्टा करता है। बचपन के इन दोस्तों के प्रति इतनी ममता होती है कि बड़े होकर जब धनिकों के बच्चे अच्छी पोजिशन पर होते हैं, उन्हें अपने बाल्यकाल के संगी-साथी भूल नहीं जाते। कृष्ण-सुदामा की मित्रता बचपन में ही हुई और उस व्यवहार से कृष्ण जी ने सुदामा को कितना धन दिया था, यह सर्वविदित है। प्राचीन काल की

शिक्षा-पद्धति में अमीर-गरीब का भेद नहीं था। सभी हर दशा में समान थे। आज भी अमीर-गरीब के बचपन की दोस्ती के अनेक उदाहरण मिलते हैं। ऐसे-ऐसे मित्र जिन्होंने अपने गरीब मित्रों को सर्वस्व दे डाला। इस काल की मित्रता स्थायी होती है। वे उनकी मदद पहुँचाते हैं, उनमें दिलचस्पी लेते हैं। अपने जीवन का सिंहावलोकन करते समय वे इस बात का अवश्य अनुभव करते हैं कि इन्हीं सुदामा-मित्रों के साथ रहकर उन्होंने मानवता का पाठ पढ़ा है; जीवन के अभावों की कचोटन से परिचत हुए हैं। इस प्रकार उनके सामाजिक जीवन का स्वस्थ विकास बाल्यकाल में ही होता है।

इसी प्रकार जिस स्कूल में गरीब-अमीर सभी बच्चे पढ़ते हैं, जहाँ पर स्कूल की वेशभूषा तथा संस्कृति में रँगकर सभी बच्चे एक-से प्रतीत होने लगते हैं। गरीब-अमीर का जहाँ भेद नहीं होता, वहाँ के स्वस्थ वातावरण में एक वर्ग के बच्चे दूसरे वर्ग के बच्चों की संगति से अवश्य लाभ उठाते हैं।

अमीर बच्चों को बाल्यकाल से ही सभी सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। प्रशंसा सुनने के भी वे आदी हो जाते हैं। अतएव अपनी अध्यापिका को अपने परिश्रम से प्रसन्न कर सुनाम कमाने की लालसा का उनमें अभाव होता है। खेल-खिलौने में भी उनकी दिलचस्पी नहीं होती। कारण उनके घर पर बढ़िया तथा विचित्र-से-विचित्र खिलौने होते हैं। फलस्वरूप वे चीजों को सँभालकर नहीं रखते, उनमें उत्सुकता कम होती है, उनकी कल्पना उड़ान नहीं भर सकती, क्योंकि उन्हें प्रत्येक वस्तु तथा सफलता को सजीव देखने की आदत-सी पड़ी होती है। वे दृढ़चित्त, एकाग्र तथा परिश्रमी भी नहीं होते। नियम पालन की ओर से भी वे उदासीन रहते हैं। अवसर का लाभ उठाने की चेष्टा न करके, वे अवसर को अपनी सुविधानुसार प्राप्त करना चाहते हैं। यह स्कूल नहीं तो दूसरे में चले जाएँगे , क्लास के साथ नहीं चल सके, तो घर पर ट्यूशन लगा लेंगे। हमें किस बात का अभाव है ? क्या मर-मरकर पढ़ना जरूरी है ही ? खेलो, खाओ

और मौज उड़ाओ—यही उनके जीवन का ध्येय है। आलस्य तथा निठल्लेपन को वह आराम कहते हैं। वे स्वार्थी और अभिमानी अधिक होते हैं, उनका पढ़ाई में मन नहीं लगता। वे रचनात्मक कार्य न करके विनाशात्मक वृत्ति अपना लेते हैं। वस्तु को तोड़ने, फोड़ने, बिगाड़ने में ही उन्हें अधिक आनंद आता है। उनकी हर एक बात में लापरवाही होती है।

परंतु मध्य वर्ग के बच्चे इसके विपरीत होते हैं, थोड़ी-सी सुविधा मिलने पर ही, वे स्वयं को सौभाग्यशाली समझने लगते हैं। प्रत्येक वस्तु उनके लिए नवीनता लिए होती है, अवसर का वह ज्यादा लाभ उठाना चाहते हैं। उनमें मौलिकता होती है, अनुकूल वातावरण में उनका शीघ्र ही सुंदर विकास हो जाता है। अमीरों के बच्चे जो कि अधिकतर नकलची होते हैं, मध्यवर्ग के बच्चों के साथ रहकर बहुत कुछ सीख जाते हैं। उनकी वृत्ति भी रचनात्मक हो जाती है। अपनी उद्दंडता और अभिमान को छोड़कर, वे साधारण बच्चों के समान व्यवहार करने लगते हैं।

अत: अपने बच्चों के मित्रों के चुनाव में अमीर माता-पिताओं को इस बात की चेष्टा करनी चाहिए कि मध्य वर्ग के बच्चों की संगति का उनके बच्चे लाभ उठा सकें। इस प्रकार मध्य वर्ग के बच्चों को भी रहन-सहन का स्तर उन्नत करने का बढ़ावा मिलेगा।

संगति का प्रभाव—जब बच्चा बहुत छोटा होता है, उसके लिए माँ तथा बहन भाई ही सब कुछ होते हैं, परंतु पाँच वर्ष की आयु का बच्चा अपने संगी-साथियों से बहुत प्रभावित होता है। मेरे मित्र इस प्रकार के कपड़े पहनते हैं, अमुक स्कूल में पढ़ते हैं, अमुक खेल खेलते हैं, अकड़-अकड़कर चलते हैं आदि बातों का वह विशेष अध्ययन करता है। जैसा उसके मित्र करते हैं वैसा करने की उसकी प्रबल कामना होती है। यहाँ तक कि उनकी भाव-भंगी, मुहावरे तथा खर्च की भी नकल करने लगता है। अतएव बच्चों की संगति के

विषय में संरक्षकों तथा अभिभावकों व अध्यापकों को विशेष जागरूक रहना चाहिए। चोरी करना, झूठ बोलना, बहानेबाजी करना, काम से जी चुराना, चटोरापन आदि बुरी आदतें बच्चे संगी-साथियों से ही जल्द सीख लेते हैं। बचपन की आदतें आगे जाकर स्वभाव बन जाती हैं। कहावत है कि पड़ोस की शक्ल तो नहीं पर अक्ल जरूर आ जाती है। मनुष्य अपनी संगति से पहचाना जाता है। अतएव बच्चे-बच्चियों को बचपन से ही अच्छे मित्रों तथा सहेलियों का चुनाव करना सिखाएँ।

यदि माता-पिता के मित्र शिष्ट हैं, तो बच्चों को उसी मंडली में से मित्र चुनने में बहुत सुविधा होगी। जब आप अपने मित्रों के घर जाएँ, तब इस बात का भी ध्यान रखें कि बच्चे-बच्ची को भी उनके बच्चों के साथ खेलने-कूदने तथा मिलने-जुलने की सुविधा हों। अपने बच्चों के मित्रों में आप स्वयं दिलचस्पी दिखावें, उनकी कमी या भूल की मजाक न उड़ाएँ। अगर उनमें से कोई पढ़ाई में पिछड़ा हो, तो अपने बच्चों के जरिए उन्हें उन्नति का प्रोत्साहन दें। मित्रों के समझाने-बुझाने का बच्चों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। बच्चे अपने सखा-सहेलियों का साथ यहाँ तक देते हैं कि आगे पढ़ने की इच्छा या संगति सुख के लिए, आगे बढ़ते रहने के लिए यथा चेष्टा करते हैं। हमारे साथी को सजा न मिले, वह पिछड़ न जाए, उसे असुविधा न हो—इस प्रयत्न में पूरा गुट सहयोग देता है। इसी प्रकार वे प्रतियोगिता में भी मिलकर बाजी मारने की चेष्टा करते हैं। बच्चों की इस टीम भावना को प्रोत्साहन देना चाहिए। उन्हें इसके लिए उपयुक्त मित्रों का चुनाव करना सिखाएँ।

कभी-कभी ऐसा होता है कि बच्चों के परिजनों में प्रोत्साहनवर्द्धक दृष्टांतों का अभाव रहता है, पर अपने संगी-साथियों का उदाहरण उन्हें उन्नति करने के लिए प्रेरणा देता रहता है। अतएव आपका बच्चा दृढ़ निश्चयी नहीं है, तो ऐसे मित्र की संगति जो

अधिक शक्तिशाली, स्थिर बुद्धि तथा सज्जन है, उसके लिए अधिक उपयोगी होगी।

मनुष्य का आकर्षण भी उसी व्यक्ति की ओर होता है, जिसे वह अपना पूरक समझता है। एक खिलाड़ी बच्चे की मेधावी मित्र के संग अच्छी पटती है। एक गंभीर प्रकृति का मित्र हँसोड़ दोस्त की संगति अधिक पसंद करता है।

बच्चे के मान-सम्मान की उसके मित्रों के सामने पूर्ण रक्षा करें, अपराध होने पर भी कभी उसकी खिल्ली न उड़ावें, अन्यथा पीठ पीछे बच्चे आपके विरुद्ध अपने दिल का मलाल, मित्रों के बीच निकालेगा और इस प्रकार अपने घायल आत्मसम्मान पर मरहम लगाने की चेष्टा करेगा। अगर बच्चे के किसी मित्र का व्यवहार आपको रुचिकर नहीं है या वह पढ़ाई के समय बच्चे को खेल में लगाने की चेष्टा करता है, तो उसको रोकने का सबसे सुंदर उपाय यही है कि आप बच्चे को मीठी झिड़की देकर कहें—'मुन्ना ! तुम्हें चाहिए कि अपने मित्र को भी पढ़ाई में लगाओ। अगर तुम्हारा दोस्त मोहन फेल हो जाएगा, तो तुम्हारी मित्र मंडली की शोभा बिगड़ जाएगी। इसमें तुम्हारी भी बदनामी है। सो मोहन भैया ! तुम भी इस समय पढ़ो, शाम को खेलना।' तुम्हारे बच्चे और उसके साथी मोहन के लिए इतना संकेत काफी है। अगर आप मोहन को झिड़केंगे तो आपका बच्चा भी मन-ही-मन आपको बुरा-भला भी कहेगा और शाम को मोहन के लिए भी उलाहने सुनने पड़ेंगे।

बच्चे अपने माता-पिता, बहन-भाई तथा घराने के दोष या बुराई के कारण मित्र मंडली में दबे रहते हैं। अतएव अपने बच्चे के आत्मसम्मान की रक्षा के लिए पारिवारिक बुराइयों को दूर करने की चेष्टा करें।

दूसरों से मिलना-जुलना—एक दूसरे के जन्म-दिवस, तीज-त्योहार, सुख-दुःख में हाथ बँटाना सिखाएँ। उन्हें अपने हाथ से

बनाए हुए उपहारों का आदान-प्रदान करना सिखाएँ। बच्चे एक-दूसरे से व्यक्तिगत बातों की चर्चा बहुत विस्तार से करते हैं; यथा माता-पिता ने हमें कौन-सा उपहार दिया ? कहाँ घुमाने ले गए ? क्या-क्या नए कपड़े तथा खिलौने दिए ? त्योहार पर क्या इनाम दिया ? हमारे घर का रहन-सहन और खान-पान का क्या तरीका है ? मेरी बहन ऐसी गुणवती है, भाई पढ़ने में ऐसा होशियार है, पिताजी का मैं लाड़ला हूँ, माँ का प्यारा हूँ; मेरे माता-पिता दोनों में बड़ा मेल है; दोनों ही सुंदर, स्वस्थ तथा शिक्षित हैं। इस प्रकार की चर्चा द्वारा वे अपनी श्रेष्ठता जताना चाहते हैं। अतएव आप अपने बच्चे के मित्रों के विचारों की उपेक्षा न करें। कभी-कभी उनके खेल-कूद तथा मनोरंजन में भी भाग लें। उनकी अड़चनों के प्रति सहानुभूति दिखाएँ, उनकी समस्याओं को सुलझाने की चेष्टा करें। प्राय: देखा गया है कि बच्चे अपने माँ-बाप की सलाह मान लेते हैं। अतएव इस बात को न भूलिए कि आप केवल अपने बच्चे के ही नहीं, वरन् उनके मित्रों के भी पथप्रदर्शक हैं। इस विषय में एक रोचक सत्य प्रसंग देखिए—

सुशीला और किरण दोनों कन्याएँ एक ही स्कूल में पढ़ती थीं। एक साल सुशीला की दसवीं वर्षगाँठ पर उसकी माताजी ने सुशीला की कुछ सखियों को बुलाया। अन्य कन्यायें तो गप्प और खेल-कूद में मग्न रहीं, परंतु किरण ने सुशीला की माताजी को मेज सजाने और ट्रे आदि लगाने में सहयोग दिया। दूसरे दिन पार्टी की चर्चा चलने पर सुशीला की उन सहेलियों की भी चर्चा चल पड़ी। सुशीला की माताजी ने कहा, "मुझे सब कन्याओं में किरण न केवल रूप-रंग और स्वभाव में ही वरन् समझदारी में भी सबसे अच्छी प्रतीत हुई है।"

यह सुनकर सुशीला खट बोली, "अगर आप किरण की माताजी से मिले, तो तबीअत प्रसन्न हो जाए। बी० ए० तक पढ़ी-लिखी है, परंतु घर का सब काम खुद ही करती है। किरण को भी वही पढ़ाती है। पिछले साल आपको मालूम ही है कि मैं परीक्षा

में फेल हो गई थी परंतु किरण की माता ने मुझे इतने प्यार से समझाया कि मेरी पढ़ाई की ओर रुचि हो गई और इस साल मैंने आरंभ से परिश्रम करना शुरू किया, तो क्लास में मेरी पोजिशन भी सेकंड आ गई। किरण हमेशा फर्स्ट आती है।'

सुशीला की माताजी ने कहा, "बेटी तुम किरण के ही साथ रहा करो, मैं उसकी माताजी को तुम्हें प्रोत्साहन देने के लिए धन्यवाद देने अवश्य जाऊँगी।"

दूसरे दिन जब किरण को सुशीला ने यह सब बातचीत सुनाई तो किरण बोली, "सच सुशीला, मुझे अपनी माताजी पर बड़ा गौरव है, वे मुझे कभी भी नहीं डाटतीं। परंतु यह सच है कि मुझमें किसी बात की कमी या बुराई देखकर उन्हें बड़ा दुःख होता है।"

सुशीला—"किरण, अब हम दोनों की माताएँ भी परस्पर सहेली बन जाएँगी, तो यह अच्छा होगा। परीक्षा के दिनों में फिर मुझे तुम्हारे यहाँ आकर तैयारी करने की आज्ञा मिल जाएगी।"

इस प्रकार किरण और उसकी समझदार माता के प्रभाव में रहकर सुशीला एक समझदार और होशियार लड़की बन गई।

बच्चों के सामाजिक जीवन का विकास बचपन में ही होना चाहिए। मित्रों के चुनाव में माता-पिता का सहयोग वाँछनीय है। अपने अड़ोस-पड़ोस स्कूल तथा मुहल्ले में बच्चों को मित्र चुनने की सुविधा होती है। ऐसी स्थिति में यदि आप इस बात का ध्यान रखें कि आपके आदेश व विचारों से मेल खाते हुए व्यक्तियों से आपकी घनिष्ठता बढ़े और बच्चे-बच्चियों को भी उनके बच्चों के साथ मेल-मिलाप करने का अवसर मिले, तो बच्चों के मित्रों के संबंध में आपको कभी शिकायत न होगी। आप भी उनके सखा-सहेलियों से परिचय बढ़ावें, इससे उनकी विशेषताओं को प्रोत्साहन देने तथा कमियों को दूर करने का अवसर मिलेगा। यदा-कदा बच्चों के खेल-कूद तथा मित्रों में शामिल होने से, आपको उन सबका विश्वास

प्राप्त करने में भी सरलता होगी। फलस्वरूप जब कोई संशय या कठिनाई आ पड़ेगी, तो बच्चे आपका सहयोग अवश्य प्राप्त करेंगे। वे आपसे छिपाकर कोई कार्य नहीं करेंगे। जब उन्हें इस बात का भरोसा हो जाएगा कि भूल करने पर हमें अमुक व्यक्ति धिक्कारेगा नहीं, अपितु ऊँच-नीच समझाकर सुधारने का तरीका भी बता देगा, तो आप पर भरोसा रखने लगेंगे। आपके सहयोग का मूल्य समझने लगेंगे।

एक परिचित नगर के एक मुहल्ले में एक व्यक्ति आते हैं, उनको सभी मालू काका कहते हैं। बगीचे में जितने बच्चे खेलने को आते हैं, वे लगभग सभी से परिचित हैं। क्योंकि वे उन्हें खेल खिलाते तथा कहानी सुनाते हैं। एक बार एक बंगाली और पंजाबी बच्चे में कुछ मार-पीट हो गई। बाद में बंगाली बच्चों ने मिलकर अपनी अलग पार्टी बना ली। अब उन दोनों पार्टियों के बच्चों में परस्पर बड़ा द्वेष फैल गया। मालू काका को यह बात बहुत बुरी लगी। उन्होंने बाल मेला नाम से एक पार्टी स्थापित की, जिसमें खेल-कूद, दौड़ तथा कहानी के लोभ से दोनों पार्टियों के अनेक बच्चे शामिल हो गए। बाद में मालू काका को पता चला कि किस प्रकार दोनों पार्टियों के कुछ बड़े लड़कों ने अपनी-अपनी पार्टी के बच्चों में द्वेष और ईर्ष्या भरी थी। यहाँ तक कि लड़कों को विरोधी पार्टी के बच्चों की बहनों पर आवाजें कसनी भी सिखा दी थीं। मालू काका की पार्टी का इतना स्वस्थ प्रभाव पड़ा कि धीरे-धीरे दोनों दलों के बच्चे भी इसी में शामिल हो गए और ईर्ष्या-द्वेष भूलकर वे मेल-मिलाप से खेलने लगे।

देखा गया है कि नेक बच्चे भी कभी-कभी संगत के कारण बुरी बातों की ओर आकर्षित हो जाते हैं। स्कूल या खेल के मैदान से लौटते समय बच्चे किसी भिखारी या कुत्ते के पीछे पड़ जाते हैं और कंकड़, पत्थर तथा लाठियों से उसको खदेड़कर परेशान करते हैं। इसी प्रकार किसी खोमचे वाले या माली को भी परेशान कर देते हैं।

पागल, बहुरूपिये या अंगहीन व्यक्तियों को परेशान करने में उन्हें बड़ा आनंद आता है। इस शैतानी में कुछ दुष्ट बच्चे अगुआ होते हैं। शेष बच्चे दर्शक बनकर शामिल हो जाते हैं। पता लगाने में प्रधानाध्यापक या टीम के लीडर को चाहिए कि जो लड़के अगुआ बने थे, उन्हें उचित सजा दें, साथ ही अन्य पिछलग्गुओं को भी ऊँच-नीच समझाकर लज्जित अवश्य करें।

मित्र एक-दूसरे के पूरक हैं, अतएव स्कूलों में भी इस बात की चेष्टा की जानी चाहिए कि ऐसे दो बच्चों को पास-बैठने तथा मिलकर काम करने का अवसर दिया जाए, जो एक-दूसरे के पूरक बन सकें। खिलाड़ी और फुर्तीले लड़के के साथ पढ़ने में मेहनती और धीर लड़के की अधिक पटेगी। खामोश और विचारशील बालक के संग, बातों में तेज और हँसोड़ बालक का जोड़ ठीक रहेगा। इस प्रकार परस्पर सहयोग द्वारा उनमें सामाजिक भावना का भी विकास होगा।

इस बात की भी सावधानी रखनी चाहिए कि बच्चा किसी दुष्ट बच्चे के प्रभाव में न आ जाए। आमतौर पर देखने में आता है कि जो बच्चे बहुत भोले-भाले तथा व्यावहारिक बुद्धि से हीन होते हैं, उनमें लीडरशीप का अभाव रहता है। ऐसे बच्चे अपनी टोली के किसी दुष्ट और दुस्साहसी साथी की अधीनता शीघ्र ही स्वीकार कर लेते हैं और बिना सोचे-विचारे उनका अनुकरण करने लगते हैं। माता-पिता या गुरु जब किसी नेक बालक को विपरीत ढंग से व्यवहार करते पाएँ, तो उन्हें चाहिए कि उनके संगी-साथियों की जाँच करें। मनुष्य अपनी संगति से जाना जाता है, बच्चों के विषय में तो यह उक्ति पूरी-पूरी सार्थक होती है, क्योंकि उनके चरित्र में अभी दृढ़ता नहीं पाई जाती, साथ ही उनकी निर्णयात्मक बुद्धि का विकास भी नहीं हुआ होता, इस कारण वे अपने संगी-साथियों की सिखावट में झट आ जाते हैं।

बच्चे के संगी-साथियों को परखने के लिए आप अपने बच्चों के सामाजिक जीवन में रुचि लें, उनके संग खेलें, बातों-बातों में उनके सखा-सहेलयों के विचारों और आदर्शों की जानकारी प्राप्त कर लें। जन्म-दिवस तथा अन्य उत्सवों पर उन्हें अपने संगी-साथियों को बुलाने का अवसर दें। आपके इस प्रकार रुचि लेने से बच्चे अपने मित्रों, सहेलियों के चुनाव के विषय में सावधान रहेंगे। अपने अच्छे मित्रों की प्रशंसा सुनकर वे इस बात का विशेष ध्यान रखेंगे कि ऐसे मित्रों की संगति में न रहें, जिनकी शोहरत अच्छी नहीं है, जो अपनी उद्दंडता व शैतानियों के कारण बदनाम हैं या पढ़ाई में कमजोर हैं; नहीं तो हम भी बदनाम हो जाएँगे।

यह संगति का प्रभाव न केवल बचपन में ही पड़ता है, परंतु बड़े होकर भी बच्चों के चरित्र पर संगी-साथियों की ही छाप स्पष्ट बनी रहती है। कॉलेजों के लड़के-लड़कियाँ जिस प्रकार अपने सखा-सहेलियों को करते देखती हैं, उसका अनुसरण वह भी करने लगती हैं। घर-गृहस्थी वाले व्यक्ति तक संगति के प्रभाव से अछूते नहीं रह सकते। इसलिए आप बच्चों को छुटपन में ही अच्छी संगति का महत्त्व बताना न भूलें। अगर आपने उन्हें अच्छे मित्रों का चुनाव करना सिखा दिया है, तो बड़े होकर भी वे गलती नहीं करेंगे। क्योंकि बचपन के संस्कार और रुचि उन्हें बुरी संगति से दूर रहने की प्रेरणा देते रहेंगे।

बच्चे को आज्ञाकारी कैसे बनाएँ ?

जमाने के साथ बच्चों की दुनिया भी बदल रही है। यों कहना उचित होगा कि शिक्षा, सभ्यता तथा अपने संगी-साथियों का बच्चे के ऊपर इतना असर पड़ने लगा है कि अब तक माता-पिता ने जो कहा बच्चे बिना हील-हुज्जत किए उसी के अनुसार करने लगे, ऐसे उदाहरण बहुत कम देखने को मिलेंगे। माँ-बाप भी बच्चों को कड़े नियंत्रण में रखने में अब विश्वास नहीं करते। क्योंकि मनोवैज्ञानिकों

ने यह साबित कर दिया है कि बच्चों के ऊपर बहुत दबाव डालने से उनके मानसिक तथा शारीरिक शक्तियों का पूर्णतया विकास नहीं होता। फलस्वरूप बच्चे जीवन के संघर्ष में पूरी तौर से अपना पार्ट अदा नहीं कर पाते।

आखिरकार बच्चे की कुछ अपनी भी अक्ल है। गिर-गिरकर ही सबने चलना सीखा है। परंतु गिरने के डर से किसी बच्चे को चलने से रोकना कौन-सी बुद्धिमानी है ? जब बच्चे की बुद्धि का विकास माँ-बाप की देखभाल में होता है, तब बुराई और भलाई समझने का उसे स्वयं ज्ञान आ जाता है। हाथ एक बार जल जाने पर कोई भी बच्चा आग में दुबारा हाथ नहीं डालता। वैसे तो अग्नि आदि से दुर्घटना होने को बड़े-बड़े लोगों से हो जाती है।

नियमों से जकड़ें नहीं—बच्चा आखिर बच्चा ही है। वह बड़ों के सदृश सभा तथा समाज के नियमों से अपरिचित है। इसलिए यह माँ-बाप का कर्तव्य है कि प्रेम और सहानुभूतिपूर्वक सही तरीकों का ही उपयोग करें।

आज्ञापालन के विषय में बच्चे के दो रुख होते हैं, एक तो प्रसन्नतापूर्वक बिना किसी दबाव के कहना मानना, क्योंकि जो मनुष्य उसे हुक्म दे रहा है, उसके प्रति उसका विश्वास और प्रेम है। दूसरा रुख है, जब बच्चा जानता है कि जो मनुष्य मुझे हुक्म दे रहा है वह मुझसे जलता है या उसका रुख पक्षपातपूर्ण है या वह हुक्म देने के अयोग्य है, ऐसी स्थिति में बच्चा केवल लाचारी में कहना मानेगा।

कई बच्चे ऐसी जिद्द पकड़ लेते हैं कि माँ-बाप के हुक्म के सिवाय और किसी के हुक्म की परवाह ही नहीं करते। ऐसी आदत बुरी है। बच्चे में सहयोग की आदत और मिलकर काम करने का स्वभाव खेल-खेल में पैदा करना चाहिए। इसलिए बच्चा केवल इस भावना से कोई अच्छा काम नहीं करे कि इससे माँ खुश होगी या न करने से पिताजी नाराज होंगे। परंतु इस विचार से करे कि यही करना

ठीक है और ठीक काम करने से माँ-बाप खुश होते ही हैं। इससे यह लाभ होगा कि अच्छे काम को वह किसी व्यक्ति विशेष तक सीमित नहीं रखेगा।

अपने आदेशों में सामंजस्यता रखें—बच्चे को उसके बुरे काम के लिए डाँटते या सजा देते समय इस बात का ध्यान रखें कि जब वह कसूर करे, उसी समय उसे डाँटना या समझाना चाहिए। एक-दो दिन बाद डाँटने अथवा कभी उसी गलती पर सजा देना, कभी छोड़ देने से बच्चे के मन में उस डाँट या सजा का असर नहीं होता, उल्टा वह चिढ़-सा जाता है। अगर किसी बच्चे ने कोई कसूर किया है, तो उससे बहुत परेशानी न दिखाएँ, नहीं तो बच्चा अपने में ऐसी खासियत समझने लगेगा कि वह जब चाहे आपको परेशान करके महत्त्व प्राप्त कर सकता है। बच्चों के सुधार के मामले में धीरता से काम लेना चाहिए। सजा देते समय इस बात का ध्यान रखना जरूरी है कि इससे बच्चे का आत्मसम्मान नष्ट न हो। अतएव उसे एकांत में बुलाकर डाँटना उचित है। सजा मिलने के बाद बच्चे में ग्लानि नहीं पैदा होनी चाहिए, नहीं तो उसमें हीनता की भावना पैदा हो जाएगी। माँ-बाप का रुख बच्चे के प्रति ममतापूर्ण होना चाहिए न कि दंड देने वाले पुलिसमैन का। कोई बच्चा जन्म से बुरा नहीं होता। बच्चे बहुत-से कसूर इसलिए कर बैठते हैं कि उन्हें सही और गलत का पता नहीं होता। इसलिए उसकी जिस हरकत को आप शरारत समझते हैं, हो सकता है कि वह उनकी अनजाने में की गई भूल हो, इसलिए बच्चे की भूल को सुधारकर उसे ठीक बात समझा देना चाहिए। अपने गुस्से के उबाल को बच्चे पर कभी नहीं निकालें। ऐसी दशा में आप बच्चे के साथ बहुत ज्यादती कर बैठेंगे।

माता-पिता इस बात का ध्यान रखें कि जिन बुराइयों के लिए वे बच्चे को रोकते-टोकते हैं, कहीं वही बुराइयाँ खुद उनमें तो नहीं हैं। क्योंकि उपदेश देने से उदाहरण पेश करना अधिक महत्त्व रखता है। बच्चे भलाई की बनिस्बत बुराई की झट नकल करते हैं।

इसीलिए यह जरूरी है कि बच्चे को सुधारने से पहले स्वयं पूर्ण होना चाहिए। अन्य कामों की तरह बच्चे आज्ञापालन करना भी सीख जाते हैं। अच्छे काम का नतीजा सुख और प्रशंसा, बुरे कामों का नतीजा दु:ख और सजा है, इन दो नतीजों का उनके कारणों से संबंध है, यह बात उनके मन में भली प्रकार जमा दें।

जिस घर में दो अमली राज होगा अर्थात् माँ भी हुक्म दे तथा बाप भी माँ की बात को काटकर दूसरा हुक्म दे, तो इससे बच्चे में अपनी सुविधा के अनुसार काम करने की प्रवृत्ति हो जाएगी। माता-पिता के परस्पर झगड़े का भी बच्चे पर बुरा असर पड़ेगा और वह उच्छृंखल बन जाएगा। बच्चों की उम्र का भी आपको ध्यान रखना चाहिए। शब्द-प्रति-शब्द तो आपके हुक्म का वह पालन नहीं कर सकते। अगर वह यथा-शक्ति आज्ञापालन करने की चेष्टा करते पाए जाएँ तो भी आपको उन्हें उत्साहित करना चाहिए। पर कुछ हुक्म ऐसे होते हैं, जो उन्हें तुरंत पालन करना चाहिए। जैसे 'वह रख दो', 'इधर आओ', 'फौरन भागो' इन आदेशों को आप खेल में ही पालन करवाएँ, तो बच्चे सुनने मात्र से पालन करने के अभ्यासी हो जाएँगे।

आदेश देते समय नीचे लिखी बातों का विशेष ध्यान रखें—

(१) बच्चे की सामर्थ्य, योग्यता तथा आयु का ध्यान रख कर जो हुक्म सोच-विचारकर दिया गया है, उसका पालन बच्चे से अवश्य कराएँ।

(२) हुक्म देने के ढंग तथा कार्य प्रणाली में आप हमेशा परिवर्तन करते रहें। अन्यथा बच्चा आपके तरीकों तथा स्वभाव से परिचित नहीं रहेगा।

(३) आपका व्यवहार बच्चे के प्रति धाँधली मचाने वाला या अत्याचारी डिक्टेटर का नहीं होना चाहिए। अगर बच्चा अपने खेल में लगा है और सोने अथवा खाने या कहीं जाने का समय हो गया

है, तो उसे दस मिनट पहले से सूचित कर दिया जाए ताकि वह अपना ध्यान खेल से हटा सके। आपकी आज्ञापालन के लिए उसे काफी समय मिल जाने से फिर वह आपके प्रति विद्रोही नहीं होगा।

(४) किसी काम के करने का आदेश देने से यह अधिक उपयुक्त होगा कि आप उसे स्वयं करते हुए उसमें उससे सहयोग देने को कहें। जैसे—"आओ बेटा, जरा अपने खिलौने तो उठवाकर रखवा लो।" आदेश जहाँ तक हो सके नकारात्मक न हो। टोकने से तो अच्छा यही है कि उसका ध्यान किसी अच्छे काम की ओर आकृष्ट किया जाए।

(५) आदेश देते समय आपकी आवाज अधिक आदेशात्मक न होकर एक सप्रेम निवेदन के रूप में होनी चाहिए। अपने माँ-बाप से ही बच्चा विनयशीलता सीखता है, अन्यथा वह भी लट्ठमार ढंग से बातचीत करना सीख जाता है।

(६) जब आप बच्चे को काम करने को कहें, उस समय आप यह ध्यान रखें कि वह आपकी बात को ध्यान से सुनकर समझ रहा है या नहीं ? कभी कभी सुनने में लापरवाही से भी आज्ञा उल्लंघन हो जाती है।

(७) एक समय जिस काम के लिए आपने उसे सजा दी थी, वह काम करने की इजाजत कभी न दें। अन्यथा आपकी हिदायतों का उस पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ेगा। कोई काम कराने से पूर्व उसके उत्साह को जाग्रत् करें न कि यह कहें कि तुम्हें यह करना पड़ेगा ? इससे बच्चे के स्वाभिमान को ठेस लगती है।

(८) अगर आपने बच्चे को धमकी या इनाम देने का वचन दिया है, तो दोनों बातों का पालन अवश्य करें। अन्यथा आपकी धमकी का डर और बात की साख दोनों मिट जाएगी।

(९) बच्चे में आप अविश्वास न रखें और न उसे बदनाम करें। इससे बच्चा हतोत्साह हो जाता है, क्योंकि बद से बदनाम बुरा तो हो

सकता है कि जो बच्चा ज्यादा शैतान या बदनाम हो, वही हर समय काम न करता हो। पर घर में उसकी ओट से असली अपराधी छिपने की कोशिश कर रहा हो।

(१०) यदि किसी बच्चे में कोई दोष या कमी हो, तो उसके हृदय में यह न जमने दें कि आप नफरत करते हैं। परंतु यह बताएँ कि आप उस बुराई को नापसन्द करते हैं और इस बुराई को छोड़ देने से वह बहुत जल्दी अच्छा बच्चा बन जाएगा।

अच्छा काम करने पर या आपके कहे अनुसार करने पर आप 'शाबाश' कहकर उसका उत्साह बढ़ाएँ। अगर वह कोई बुरा काम करने जा रहा हो, तो यह कहकर कि 'मेरा बेटा ऐसा बुरा नहीं है जो ऐसा खराब काम करे' उसके मन में यह विचार जाग्रत् कर दें कि क्योंकि बच्चा बहुत अच्छा लड़का है, इसलिए बुरा काम करना उसकी आदत और शान के खिलाफ है। इस तरह से बच्चों का झुकाव अच्छी बातों की तरफ खुद हो जाएगा।

समझदार माँ-बाप इसी प्रकार के तरीकों से बच्चों को आज्ञाकारी तथा कर्तव्यपरायण बना लेते हैं। एक बुद्धिमती माता ने बताया कि जब उसे अपने बच्चे से ऐसा कार्य करवाना होता है, जिसमें बच्चे की ओर से प्रतिरोध की संभावना होती थी, तो वह पहले अपने बच्चे को पास बुलाकर दुलार से पीठ पर हाथ फेरती हुई तद्विषयक कोई प्रोत्साहन उत्पन्न करने वाली बात सुनाकर उस कार्य को करने के लिए बच्चे की मानसिक तैयारी कर लेती है और फिर उसे आदेश देती है।

एक बार बच्चे की वार्षिक परीक्षा निकट थी, वह गणित में बहुत कमजोर था, अतएव गणित के अभ्यास करने में उसका मन ही नहीं लगता था। माँ न उसे दुलारते हुए कहा, "बेटा, तू सब विषयों में इतना होशियार है। अबकी तो तू अपनी कक्षा में जरूर प्रथम

आएगा, आखिरकार तो मेरा बेटा जो ठहरा। मैं भी बचपन में अपनी कक्षा में प्रथम रहती थी।"

यह सुनकर बच्चा मुँह लटकाकर बोला, 'पर माँ हमारा गणित बड़ा कमजोर है। उसके मारे हमारी पोजीशन गिर जाती है।" माँ ने पुचकारते हुए कहा, "अरे बेटा यह कौन बड़ी बात है, कल से हम दोनों गणित किया करेंगे, मैं दस दिन में तुझे सारे सवाल सिखा दूँगी।"

बच्चे ने उत्साहित होकर पूछा, "सच माँ, कल से तुम मुझे पढ़ाओगी। अच्छा तब तो मैं जरूर गणित का अभ्यास करूँगा।"

बस दूसरे दिन से बच्चे की माँ ने गणित के दो-चार गुर बच्चे को सिखा दिए। माँ से प्रोत्साहन पाकर बच्चे ने अपनी कमी पूरी कर ली जबकि मास्टर दस बार कहकर हार गया था, पर वह लड़का गणित करके ही नहीं लाता था।

जो व्यक्ति बच्चे की 'योग्यता' तथा 'मूड' को समझकर आदेश देता है, उसे बच्चे का सहयोग प्राप्त करने में कठिनाई नहीं होती। उसके आदेशों का पालन करने में बच्चे अपना मानसिक और शारीरिक सहयोग सहर्ष देते हैं। दबाव या डराकर कराया हुआ काम बच्चों को कामचोर और फरेबी बना देता है। जब तक उन पर निगरानी रहती है तभी तक वह काम करते हैं, बड़ों की पीठ मुड़ते ही फिर उस काम को महत्त्व ही नहीं देते। डाँट या मार खाते-खाते ऐसे बच्चे ढीठ हो जाते हैं और फिर उनका रुख ऐसा हो जाता है कि पीठ पर अगर दो धप्प पड़ भी गए, तो क्या हुआ, वह तो मेरी पीठ की न्योछावर थी।

बड़े एक भूल और कर बैठते हैं कि वे अपना कोई काम करवाने के लिए बच्चे के पिछले अपराधों की याद दिलाकर उसे दबाने की चेष्टा करते हैं ? जैसे एक बड़ी बहन अपने छोटे भाई राकेश से बोली, "जरा चिट्ठी तो डाल आ। अच्छा तू नहीं सुनता,

ठहर जा, पिताजी को आ जाने दे, आज मैं उन्हें बताऊँगी कि पिछले इतवार को तू सिनेमा गया था।"

ऐसे मौके पर बच्चा दब तो जाएगा, परंतु इस प्रकार से कहना मनाना बच्चे के लिए हितकर नहीं है।

बच्चों से काम कैसे करवाएँ ?—आप जब बच्चे से कुछ काम करवाना चाहते हैं, तो उस समय आदेश देते हुए इस बात का विशेष ध्यान रखें कि बच्चा 'हाँ' और 'ना' की दुविधा में न पड़े। "बच्चा' तुम खाओगे या नहीं ? नहाने चलोगे कि नहीं ? क्या तुम सोने के लिए चल रहे हो ?" आपके इस प्रकार पूँछने पर संभव है कि वह अपनी प्रधानता जताने के लिए अथवा अपनी सुविधा के लिए नकारात्मक उत्तर दे। तब आप उसे समझाना शुरू करके सोने या खाने के लिए ले चलने का प्रयत्न करें। पर बच्चा जी तो अपने खेल में डूबे हुए माँ की ही नहीं सुनते। अगर बच्चे के नहाने का समय है और बच्चा अपनी नई मोटर से खेल रहा है, तो कहें, भइया चाबी भरकर मोटर को गुसलखाने की ओर ले चलो।' बस अब बच्चा भी वहाँ पहुँच जाएगा। और आप मोटर उठाकर गुसलखाने की मुंडेर पर रख दें और बच्चे को बातों में उलझाए रखकर नहला दें। इसी तरह अगर बच्ची गुड़िया खेलने में उलझी हुई है, तो उससे कहें "चलो मुन्नी रानी, गुड़िया को भी भूख लगी है, इसको भी हाथ धुलवाकर खाने के कमरे में ले चलो।" बस बच्ची खुशी से आपके साथ चल देगी और गुड़िया को सामने बिठाकर खाना खाने में उसे भी आनंद आएगा। इसी प्रकार बाहर घूमने जाते समय या सोते समय भी बच्चे अपने-अपने गुड्डे-गुड़ियों को साथ लेकर काम करने में एक बड़प्पन का अनुभव करते हैं। गुड्डे-गुड़ियों की तुलना में वे स्वयं को बड़ा समझकर, इस बात की चेष्टा में रहते हैं कि काम ठीक से यथा समय किया जाए।

बच्चे के संग बहस करनी व्यर्थ है—कई माताएँ बच्चे से काम करवाते समय उन्हें क्यों और किसलिए आदि कैफियत देती हैं। बच्चा उनके दृष्टिकोण को तो समझ नहीं सकता उल्टा वह बाल की खाल खींचने लगता है, जैसे—इससे क्या होगा ? ऐसा क्यों करना चाहिए ? न करने से क्या होगा ? आदि प्रश्नों की झड़ी लगाकर सिर खाने लगता है। इसलिए छोटे बच्चों को लंबी-चौड़ी कैफियत देने की आवश्यकता नहीं है। कई माताओं को अपने बच्चों को बार-बार याद दिलाना पड़ता है, तब भी वे काम में देरी करते हैं। जूँ की तरह रेंग-रेंगकर काम करने की उनकी पहली आदत-सी पड़ जाती है। वे कभी भी समय पर तैयार नहीं हो पाते। पहले तो इधर-उधर खिलवाड़ में अधिकांश समय बरबाद कर देते हैं, फिर अंतिम कुछ क्षणों में जल्दी-जल्दी में झुँझलाकर काम समाप्त करने की चेष्टा करते हैं। ऐसे बच्चों को कुछ समय रहते ही काम को समाप्त करने का तकाजा करना चाहिए।

उद्दंड और बदमिजाज बच्चे—ऐसे बच्चे नियमों के लागू होने पर बहुत छटपटाते हैं। रो-धोकर जिद्द करके मनचाही करने की चेष्टा में रहते हैं। तीन वर्ष की आयु से बच्चा अपने अधिकारों और सुविधाओं के लिए लड़ने लगता है। पर अच्छाई और बुराई न्याय और धाँधली में भेदभाव करना उसे नहीं आता। वह अपनी अबोधता के कारण जिद्दी और धाँधली-पसंद बन जाता है। अगर बच्चा बात-बात पर रोता और अनचाही करने का प्रयत्न करता है, तो इसका अभिप्राय यह है कि माँ उसे ठीक से समझ नहीं पा रही है। उसे बच्चे को सँभालने का ठीक ढंग नहीं आता। ऐसी स्थिति में इस बात का पता लगना चाहिए कि क्या बच्चे को काफी समय तक अपने संगी-साथियों के साथ खेलने का अवसर मिलता है ? क्या वह ऊपर चढ़ने-उतरने, गाड़ी आदि ढकेलने के खेल खेलता है ? क्या उसकी दिनचर्या और कमरे की व्यवस्था ऐसी है कि जब वह घर के अंदर रहता है, तो उसके खेलने और घूमने-फिरने, चीजों को छूने की

आजादी है ? कहीं नकारात्मक आदेशों से वह जकड़ा हुआ तो नहीं है ? घर के बड़े बच्चे उसे दबाते और चिढ़ाते तो नहीं हैं ? उसका स्वास्थ्य तो ठीक है ?

जब बच्चे का मिजाज बिगड़ा हो, वह जमीन पर रो-धोकर बिखर रहा हो, उसके प्रति अधिक ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। आपके नाराज होने या मारने-पीटने से उस पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। ऐसे समय में बच्चों के प्रति दृढ़ पर स्नेहपूर्ण रुख अपनाना चाहिए। अनुभव से उसे समझते देर नहीं लगेगी कि रो-धो-कर मैं अपने माँ-बाप से गलत बात नहीं मनवा सकता। जो गलत काम वह करा रहा है, उससे बच्चे को अलग करके घड़ी भर के लिए उसे अकेला छोड़ देना उचित है। रो-धोकर जब वह शांत हो जाए, तब प्यार से उसके आँसू पोंछकर उसे उसकी भूल समझाएँ, वह जान जाएगा कि रोने-धोने और जिद्द करने से यहाँ गुजर नहीं है। ऐसे समय में सजा देना व्यर्थ है।

जिस प्रकार बच्चे अच्छे तरीके, अपने संगी-साथियों के साथ हेल-मेल से रहना तथा अपने माता-पिता को प्यार करना, अनुकरण और अनुभव से सीख जाते हैं, उसी प्रकार अपने मनोवेगों पर काबू रखना, दूसरों के अधिकारों की रक्षा करना, सहयोग से काम करना भी अभ्यास और दूसरों के उदाहरणों से सीखते हैं। छोटे बच्चे को जैसे धीरे-धीरे अपने शरीर को संतुलन करना आ जाता है, उसी प्रकार उनके मनोवेगों में भी संतुलन आ जाने पर वे सामाजिक ढंग से व्यवहार करना सीख जाते हैं।

अगर कोई हानि हो जाने पर बच्चा बहुत दुखी और लज्जित है तो यही पर्याप्त है। अनजाने में प्लेट टूट जाने अथवा खेल-कूद में कमीज फट जाने पर उसे मारना मूर्खता है। हर अपराध पर बच्चे को धमकाना उचित नहीं—"मोहन अगर तू साइकिल साफ नहीं करेगा, तो मैं तुझसे साइकिल छीनकर रमेश को दे दूँगा। अगर तू

परीक्षा में पास नहीं होगा, तो तेरा जेबखर्च बंद कर दिया जाएगा।" हमेशा इस प्रकार की धमकी देने से बच्चा ठीक प्रकार से काम करने का आदी नहीं बनता। वह सफाई या पढ़ाई केवल इसलिए करेगा क्योंकि इनके न करने से उसे वस्तु विशेष के लाभ से वंचित होना पड़ेगा। सफाई और पढ़ाई स्वतंत्र रूप से उसके लिए कुछ महत्त्व नहीं रखेगी।

अगर आपके बार-बार आदेश देने और धमकाने पर बच्चा कहना नहीं मानता, तो उसका भी कुछ कारण हो सकता है। बच्चे को जब दबाते हों या माँ छोटे बच्चे की ओर अधिक ध्यान देती हो और तुलना में उसे हमेशा आलोचना सुननी पड़ती हो, तो बच्चा बड़ों को परेशान करने के लिए भला-बुरा सुनकर और सजा पाकर भी कहना नहीं सुनता। वह अपनी जिद्द से बड़ों को परेशान करके अपनी प्रधानता जताना चाहता है।

असल में माता-पिता के पक्षपातपूर्ण व्यवहार ने बड़े बच्चे को ऐसा जिद्दी बना दिया है। जब तक वह घर में अकेला बच्चा था, माँ उसे एक खिलौना मात्र समझती थी, उसका सभी काम वह खुद करती थी। घर में सबसे पहले उसकी सुविधा और आराम का ध्यान रखा जाता था, फलस्वरूप वह स्वार्थी और आत्मनिर्भर हो गया। अब अचानक एक नए भाई-बहन के जन्म पर वह स्वयं को सिंहासन से ढकेले हुए राजा के समान अपमानित समझता है। उसके मनोवेगों में तूफान उठ खड़ा होता है। वह चिल्लाकर, बिगड़कर, रोकर, वस्तुओं को तोड़-फोड़कर अपनी प्रधानता जताना चाहता है।

कई बच्चे अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए स्वार्थी बन जाते हैं। माँ पहले मेरा काम करे, मेरी बात सुने, मेरी इच्छा पूरी करे, ऐसा वह चाहते हैं। सभी उनकी बात मानें, वे किसी की न सुनें, यह रुख बहुत असामाजिक है। कई बच्चे शर्मीलेपन का अभिनय करके कहना नहीं मानते, माता-पिता भी उनको यह शरमाता है, नहीं तो अभी कहना मान

लेता ऐसा कहकर उसे आज्ञा का उल्लंघन करने की प्रेरणा देते हैं, यह उचित नहीं है।

बच्चे को कोई काम करने का आदेश देते समय इस बात का ध्यान रखें कि उस कार्य को करने में उसके सम्मान और अधिकार की हानि न हो। बड़े भाई-बहन बच्चे को प्राय: ऐसी धमकी देते हैं कि ठहरजा, पिताजी आने दे, तुझको मजा न चखाया तो कहना, तब जानेंगे कि उनके सामने चूँ भी कर जाए। ऐसी धमकियों से बच्चा ढीठ बन जाता है। वह जानबूझकर हुक्मउदूली में अपनी शान समझता है।

आपकी आज्ञा का पालन बच्चा सहर्ष करे, वह इस बात को समझे कि माता-पिता उसकी भलाई के लिए कहते हैं, वे उसे प्यार करते हैं और अपने माँ-बाप का कहना करना उन्हें अपने अच्छे कामों से खुश करने में उसे भी सुख और आनंद मिलता है। यह तभी संभव है जबकि आप बच्चे के प्रति एक नियामक दरोगा न होकर सहनशील माता-पिता होंगे, तो बच्चा आप का आज्ञापालक अवश्य होगा।

सभ्यता व संस्कृति

एक अनुभवी शिक्षक का कथन है कि हम लोग अपने बालकों की शिक्षा के संबंध में भी उदासीन हो गए हैं। माता-पिता को समय नहीं मिलता कि बालकों की ओर समुचित ध्यान दें। वे चाहते हैं कि बालक को पाठशाला में भर्ती करादें और आगे का सब काम अध्यापक ही कर लेंगे, पर आज के अध्यापक को कोई परवाह नहीं। यह एक कारण है, जिससे बालकों की शिक्षा दूषित होती है।

मान लीजिए कि जब आप कहीं आमोद-प्रमोद के लिए जाते हैं, तो वहाँ पड़ाव डालकर अपना सारा काम स्वयं करते हैं। झाड़ू देकर जमीन साफ करते हैं, लकड़ियाँ बीन आग जलाते, बर्तन साफ करते, चाय बनाते, पत्तों पर भोजन करते। यह सब काम बड़ी रुचि

से करते हैं, जिसमें एक प्रकार का आनंद आता है। वही काम यदि घर पर करना पड़ जाए, तो संभवत: आप यह कहकर इनकार कर देंगे कि 'वह हमारा काम थोड़े ही है।" बच्चे को सभ्य व सुसंस्कृत बनाना माता-पिता की जिम्मेदारी है, उस जिम्मेदारी के पालन से ही बच्चे समाज के लिए उपयोगी बन पाते हैं।

जिस प्रकार मकान की इमारत का ख्याल रखकर हम नींव डालते हैं, उसी प्रकार बच्चे की समझ तथा पढ़ने की कठिनाई को समझकर हमें पहले उस ओर बच्चों की दिलचस्पी पैदा करनी आवश्यक है। बहुतेरे माता-पिता की यह शिकायत होती है कि बच्चा स्वयं नहीं पढ़ता, उसको एक साल स्कूल जाते हो गया परंतु उसने कुछ नहीं सीखा है। घर पर भी मार-मारकर पढ़ाना पड़ता है। अब भला बताइए कि जिस काम के कारण शुरू में ही बच्चे का खेलना बंद हो जाए, तीन घंटे कक्षा में कैदी के समान बँधकर बैठना पड़े, न हँस सके, न बोल सके और न कहीं इधर-उधर जा सके। पढ़ाई कुछ समझ में न आने पर मास्टर से तथा घर पर मार-पीट अलग सहनी पड़े, उस काम में बच्चे की दिलचस्पी कैसे हो सकती है ? वह तो मास्टर को एक हौआ तथा पढ़ाई को एक मुसीबत समझने लगते हैं। लड़का जब घर पर कुछ शरारत करता है तो माँ-बाप धमकाकर कहते हैं, "यह मेरा कहना नहीं मानता, दिन भर घर में ऊधम मचाए रहता है, अगले महीने से इसे स्कूल भेजूँगी, तब इसकी तबीअत ठीक होगी, सारी बदमाशी भूल जाएगा।' जहाँ भी पढ़ाई के विषय में बच्चे का आरंभिक अनुभव बुरा हुआ, बड़ा होने तक दूर नहीं होता। यही कारण है कि मेधावी बच्चों में दिलचस्पी की कमी बनी रहने से वह उतना अच्छा नतीजा नहीं दिखा पाते।

इससे यह सिद्ध होता है कि एक ही काम भिन्न-भिन्न तरीकों से दिलचस्प हो सकता है और अरुचिकर भी। बच्चों के विषय में भी यही बात है कि उनको जब आप कोई काम सिखाएँ, तो उसके प्रति बच्चों की उत्सुकता तथा शौक बनाए रखें, फिर आप देखें कि

बच्चे अपना खाना-पीना भूलकर किस प्रकार ध्यान से आपकी बात सुनते हैं।

वास्तविक बात तो यह है कि माता ही बच्चे की सर्वप्रथम गुरु है। पाँच वर्ष की उम्र में बच्चा योग्य माँ से इतना कुछ सीख सकता है, जितना चार साल आगे स्कूल में नहीं सीख सकेगा। कहानी-किस्से के रूप में ही बच्चा इतिहास, भूगोल, धर्म विज्ञान, स्वास्थ्य रक्षा, सफाई, कविता, कहानियाँ चुटकुले आदि की शिक्षा प्राप्त कर लेता है। बच्चे कहानी सुनने के बड़े शौकीन होते हैं। कहानियों के द्वारा ही बच्चों का चरित्र-निर्माण हो सकता है। अब यह तो माँ की योग्यता और चरित्र पर निर्भर करता है कि बच्चे को किस प्रकार की कहानी सुनाएँ। परियों की कहानी जानने वाली माताएँ बच्चों को वह सब सुनाती रहती हैं, परंतु माता जीजाबाई बच्चे शिवाजी को रामायण और महाभारत की वीर कहानियाँ सुनाती रहती थीं। तभी तो आगे चलकर उनका बच्चा धर्म प्रतिपाल, आज्ञाकारी और साहसी बना। घर में जब बच्चों की स्मरण शक्ति का इन कहानियों के द्वारा विकास हो जाएगा, वह बड़ा होकर उन्हीं बातों की चर्चा इतिहास, भूगोल विज्ञान आदि की पुस्तकों में पढ़ेगा, तब उस विषय के अपने बाल्यकाल के ज्ञान को वह उसी कड़ी में जोड़ देगा। इस प्रकार अवस्था में शिक्षण की जो पहली कड़ी तैयार हुई होगी, आगे का ज्ञान उसी के साथ शृंखलाबद्ध हो जाएगा। पहली मजबूत नींव पर ही आगे की इमारत खड़ी कर दी जाएगी।

बच्चों को स्कूल तभी भेजना चाहिए, जब अपने संगी-साथियों को स्कूल जाते देख, वहाँ की मनोरंजक घटनाएँ, खेल-तमाशे आदि के विषय में सुन, उनके दिल में भी स्कूल जाने की लालसा जाग्रत् हो जाए। आप भी बच्चे के दिल में इस भावना को जाग्रत् करने में सहायता दें। यह कहने से कि 'वाह बच्चा अब बड़ा हो गया है, अब तो वह भी शान से बस्ता दबाकर स्कूल जाया करेगा, वह भी बड़े भैया की तरह इनाम जीतेगा। अपनी कक्षा में फर्स्ट रहेगा, भैया ने

जो कहानी और कविताएँ याद की हैं, उन्हें जब वह अपने मास्टर साहब को सुनावेगा, वह कितने प्रसन्न होंगे। वार्षिक जलसे में उसे सबके सामने कविता सुनाने का अवसर दिया जाएगा, क्योंकि बच्चा कविता कहने में तनिक भी नहीं शर्माता। देखना तो यही जब हमारा बच्चा स्कूल जाएगा, उसकी कितनी शान रहेगी। इस प्रकार की बातों से बच्चे की आँखों में एक खुशी की तथा उत्साह की चमक आ जाएगी। वह स्वयं ही स्कूल जाने के लिए उतावला रहेगा। अपना नया बस्ता, नई आकर्षक तस्वीरों वाली पुस्तक, खाना ले जाने के लिए नया डिब्बा, छोटी गिलासी—ये सभी चीजें उसमें एक बड़प्पन और विशेषता का अनुभव पैदा करेंगी।

उपयुक्त उपकरणों के लाभ—अच्छा हो कि आरंभ में बच्चे को ऐसे स्कूल में भेजा जाए जहाँ मॉंटेसरी अथवा किंडर गार्टन प्रणाली से बच्चे को शिला दी जाती है। इन स्कूलों में केवल किताबों और स्लेटों द्वारा ही बच्चे को नहीं पढ़ाते। वर्णमाला का परिचय किंडर गार्टन के बक्सों द्वारा दिया जाता है, जिसमें वर्ण के भिन्न-भिन्न टुकड़े होते हैं। उन पर नंबर लिखे होते हैं। प्रत्येक बच्चे को एक-एक बक्स दे दिया जाता है। एक बक्स अध्यापिका के पास होता है। बच्चे चार-चार के ग्रुप में छोटी-छोटी टेबुलों के आस-पास अपनी-अपनी कुर्सियों पर बैठ जाते हैं और अध्यापिका जिन-जिन टुकड़ों को जिस प्रकार से सजाती है, उसी प्रकार से सजाकर वे भी वर्णों की आकृति बनाते हैं। जिस ग्रुप के बच्चे सबसे अधिक शब्द बना लेते हैं, वही ग्रुप जीत जाता है। इसी प्रकार गिनती सिखाने के लिए दस रंग की लकड़ी की रंग-बिरंगी गेंदें होती हैं। गेंद लुढ़का-लुढ़काकर खेलने में ही बच्चे दस तक गिनती सीख जाते हैं। तत्पश्चात् उन्हें तार में पिरोये हुए मानकों पर सौ तक गिनना आ जाता है। गोल-मोल रंगदार पहियों पर भी छोटी-बड़ी ढेरी लगाकर गिनना, जोड़ना, घटाना बच्चे आसानी से कर लेते हैं। इसी प्रकार उन्हें चौखूँटा, तिकोना आदि आकार का ज्ञान कराने के लिए एक लकड़ी

के बोर्ड में खाँचे बने होते हैं, वे गुटकों के ढेर में से खाँचे के आकार के गुटके छाँट-छाँट कर उन खाँचों में फिट कर करते हैं। इस प्रकार से उन खाँचों के आकार और नाप से वे सहज में ही परिचित हो जाते हैं।

क्रियात्मक शिक्षण विधि—छोटी कक्षाओं में बच्चों का शिक्षण इस प्रकार का होना चाहिए कि उनमें रचनात्मक कार्य अधिक हो। छोटे बच्चों के लिए यह बड़ा असंभव है कि किताब, पेंसिल लेकर अध्यापक का व्याख्यान सुनें। यह भी एक कारण है कि उन्हें पढ़ाई में दिलचस्पी मालूम नहीं होती और पढ़ना तथा स्कूल जाना उन्हें बुरा लगता है।

प्रकृति-अध्ययन तथा बागवानी ऐसे विषय हैं जिसमें अधिकांश बच्चे दिलचस्पी लेते हैं। तीन-चार बच्चों को मिलकर एक क्यारी को पानी देना, सुधारना, बीज बोना आदि का काम अध्यापिका की निगरानी में सौंपा जा सकता है। इस प्रकार से पौधे के अंकुर से लेकर फूल तक का जीवन भी बच्चे समझेंगे तथा उसे अपने सामने उगते देखकर उसकी रक्षा करने का भार वह खुशी से अपने ऊपर लेंगे। अपने हाथ से बोए हुए पौधों में फूल आदि देखकर उन्हें कितना आनंद होगा ? फूलों की रक्षा करना, उन्हें सुरक्षित रखना आदि की भावना उनमें बचपन से ही आ जाएगी। बाद में उन्हीं फूलों को उन्हें गुलदस्ते में लगाना सिखाएँ। यह काम स्कूल में भी कराया जा सकता है और घर पर माँ-बाप भी करा सकते हैं। बच्चों को सवेरे-शाम टहलाएँ। ले जाते समय योग्य पिता उन्हें तारों का, भूगोल का ज्ञान भी वास्तविक चीजों को दिखाकर दे सकता है। सूरज, चाँद, सप्तऋषि, ऋतुएँ, दिशाएँ, नदियाँ, पहाड़, झील, तालाब, फसल, गाँव, कस्बा, कल-कारखाने आदि बच्चों को दिखाने से उस विषय में वह जल्द समझ जाएँगे। बनिस्बत इसके कि किताबों से उनकी परिभाषा रटाई जाए।

तस्वीरें, मैजिक लालटेन तथा सिनेमा बच्चों के शिक्षण में बहुत उपयोगी साधन साबित हुए हैं। इनके द्वारा बच्चों को देश-विदेशों के विषय में परिचित करना बिलकुल सहज है।

आप सभा-सोसाइटियों में, रामायण-कीर्तन में या किसी गोष्ठी में जाएँ, तो अच्छे कपड़ा पहनाकर अपने बच्चे को भी साथ ले जाएँ। इसस दो लाभ होंगे। बच्चा जितनी देर पड़ोस के बच्चों की संगत में रहता है, उससे अधिक उपयोगी कार्य वह कर लेगा। उसका मनोरंजन भी होगा, नई जानकारी होगी। यह सत्य है कि वहाँ का भाषण, कीर्तन या धर्मचर्चा वह समझ न पावे, परंतु उसकी एक सूक्ष्म छाप उसके हृदय पर पड़ेगी। वहाँ दूसरे बच्चों को खेलते बैठे देखकर उसका उनसे परिचय होगा, सफाई, व्यवस्था, सजावट, उठने-बैठने का ढंग, बातचीत करने का सलीका आदि सब कुछ उसे मालूम होता रहेगा। जब वह घर लौटेगा तो बड़ा प्रसन्न रहेगा। अपनी माता, बहन से अपनी सारी देखी हुई बातों को तोतली भाषा में सुनाएगा। दूसरे दिन जब मित्र मंडली में खेलने जाएगा, तो वहाँ भी अपने बाल मित्रों से वह सब कुछ सुनाएगा। दूसरे बच्चे उसे अपने से अधिक जानकारी रखने के कारण उसका आदर करेंगे। एक लाभ और भी होगा कि पिता-पुत्र में आत्मीयता बढ़ेगी। बच्चे को पिता से जो एक प्रकार का भय बना रहता है, वह उनसे बोलने, उनके सामने कहीं जाने में प्रायः भय खाता रहता है, वह मिट जाएगा। बच्चा अपने पिता के समीप आएगा और पिता को अपने बच्चे के नन्हें विचारों, उत्साहों और उमंगों को समझने का अवसर मिलेगा।

रेडियो भी बच्चों के मनोरंजन एवं ज्ञानवर्द्धन में बहुत लाभदायक सिद्ध होता है। हमारे रेडियो स्टेशनों से हर रविवार को बच्चों का जो प्रोग्राम ब्राडकास्ट होता है, उसमें बच्चे कितनी अधिक दिलचस्पी लेते हैं, यह प्रायः सभी रेडियो सुनने वाले जानते हैं। बच्चों के प्रोग्राम को वह एक अपनी चीज समझते हैं और बहुत दिलचस्पी

से उन कहानियों और कविताओं को सुनते हैं, जो बच्चों के द्वारा ही खास उन्हीं के मनोरंजन के लिए ब्राडकास्ट होती हैं।

अच्छी कहानियों का प्रभाव बच्चों पर बहुत जल्द होता है। देखने में आया है कि जो बुराइयाँ बच्चे डाट-डपट से नहीं छोड़ते, वही अच्छी कहानियों के प्रभाव से दूर हो जाती हैं। महापुरुषों ने अपनी आत्मकथा में किसी-न-किसी कहानी से बड़ों के जीवन की मुख्य घटनाओं से प्रभावित होने का उल्लेख किया है। महात्मा गांधी पर श्रवणकुमार और सत्यवादी हरिश्चंद्र का तथा अपनी धर्म-परायणता का चिरस्थायी प्रभाव पड़ा। इसका उल्लेख उन्होंने अपनी जीवनी में भी किया है। प्रत्येक बच्चे के जीवनकाल में इस प्रकार के अनुभव होते हैं और वह उनके चरित्र-निर्माण तथा शिक्षण में बड़ा महत्त्व रखते हैं। इसलिए कथा-कहानी द्वारा बच्चों को किसी बात के विषय में बताना एक बहुत ही सरल तथा मनोरंजक तरीका है।

खेल द्वारा शिक्षा में रुचि पैदा करना—बच्चों को खेल बहुत प्रिय होते हैं। जब वह कुछ बड़ा हो जाए, तो उसे प्रतियोगिता के खेल अथवा अभिनयात्मक खेल खिलाएँ। इससे उसका मनोरंजन और शिक्षण दोनों होंगे। जिन खेलों में अभिनय के साथ गीत भी गाए जाएँ, वे खेल बच्चों को अधिक प्रिय होते हैं। बच्चे संगीतमय खेल झुंड बनाकर गाना गाते हुए अथवा बाजे की ताल पर कदम-कदम चलते हुए खेलना बहुत पसंद करते हैं। इसके अतिरिक्त वे गाने जिनमें गीत के साथ ही जानवरों या पक्षियों की बोलियाँ भी बोली जाएँ, उन्हें बहुत रुचिकर प्रतीत होते हैं। बच्चों की रुझान देखकर इस प्रकार के गाने मामूली-सी तुकबंदी करके आसानी से रचे जा सकते हैं। बच्चों की दिनचर्या में खेल और मनोरंजन का बहुत महत्त्व है। अतएव नए-नए प्रकार के खेल जो बच्चों की आयु तथा स्वास्थ्य के अनुकूल हों तथा जिनसे उन्हें शारीरिक और मानसिक स्फूर्ति मिले, उन्हें खिलाए जाएँ।

बहुत कम माता-पिता अपने बच्चों के खेल में सहयोग देते हैं। इसका कारण यह है कि वे उनके खेल को एक फजूल की बात समझते हैं। वास्तव में खेल के द्वारा ही बच्चे का शारीरिक और मानसिक विकास होता है तथा पढ़ाई की ओर उसकी रुचि बढ़ती है। वह अपनी जानकारी बढ़ाता है, उसमें सहयोग और मेल-मिलाप की भावनाएँ पैदा होती हैं। आपने देखा होगा कि जो परिजन या शिक्षक बच्चों के खेल में दिलचस्पी लेता है, बच्चे उसका कहना सहज ही मान लेते हैं ! देखो बच्चों इस वक्त काम का समय है, जल्दी काम समाप्त हो जाएगा तो फिर हम खेलने चलेंगे, नहीं तो खेल के समय भी काम करना पड़ेगा।" अभिभावकों के इतना कहने की देरी है कि बच्चे जल्दी-से-जल्दी अपने काम को निबटाने की चेष्टा करने लगते हैं।

बालकों में अपराध और उसका उपचार

बच्चे बहुधा बड़े प्यारे लगते हैं और प्रायः यह कहा जाता है कि वे बड़े ही अच्छे हैं और उनका जीवन बड़ा ही सुखी है; परंतु सभी बच्चों के विषय में यह बात लागू नहीं होती। कुछ बच्चे ऐसे होते हैं, जो वातावरण में अपने को व्यवस्थित नहीं कर पाते। ऐसे बच्चे प्रायः ऐसे व्यवहार दिखलाते हैं, जिन्हें सामान्य नहीं कहा जा सकता। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि उनमें व्यक्तित्व संबंधी कुछ कठिनाइयाँ आ गई हैं। ऐसे बच्चे संवेगात्मक दृष्टिकोण से अस्वस्थ होते हैं। यों तो कठिनाइयाँ और समस्याएँ सभी व्यक्तियों के अनुभव की वस्तु होती हैं, चाहे वे बच्चे, प्रौढ़ या बूढ़े क्यों न हों ! परंतु संवेगात्मक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति अपनी समस्याओं का हल समाज द्वारा स्वीकृत साधनों के सहारे करना चाहता है। इसके विपरीत संवेगात्मक दृष्टि से अस्वस्थ व्यक्ति अपने आवेशवश किसी समय कुछ भी कर सकता है।

पुराने जमाने में अपराधी बालक के असामान्य व्यवहार का कारण किसी भूत-प्रेत अथवा शैतान को समझा जाता था। ऐसे बालकों से लोग डरा करते थे और कभी-कभी उनकी पूजा भी किया करते थे। इसके विपरीत उन्हें कभी-कभी मार डालने की भी चेष्टा की जाती थी। परंतु अपराधी बालकों के प्रति आजकल ऐसा व्यवहार नहीं किया जाता। मनोवैज्ञानिक खोजों के फलस्वरूप अब उनके व्यवहार के कारण को समझने की उपयोगिता मान ली गई है। पाश्चात्य देशों में तो अपराधी बालकों के उपचार के लिए बड़ी-बड़ी संस्थाएँ संचालित की जा रही हैं और उनसे अपराधी बालकों का बड़ा ही उपकार होता है।

स्वाभाविक आवश्यकताओं की पूर्ति न होना—अपनी अनेक स्वाभाविक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बालक को दूसरों पर आश्रित रहना होता हैं, फलतः उसे दूसरों के अनुसार भी अपने को व्यवस्थित करने की चेष्टा करनी होती है। इन आवश्यकताओं का तीन प्रकार का वर्गीकरण किया जा सकता है—(१) शारीरिक; जैसे—भोजन, जल, नींद तथा अन्य शारीरिक सुविधाएँ। (२) आत्म-संबंधी; जैसे—दूसरों से प्रशंसा, राय तथा अपनत्व की भावना पाने की इच्छा। (३) सामाजिक; जैसे—दूसरों के कार्यों में हाथ बँटाने हेतु कुछ सामाजिक कौशल प्राप्त करने की इच्छा। ये स्वाभाविक आवश्यकताएँ बालकों के विभिन्न व्यवहार और कार्यों के लिए अभिप्रेरणाएँ हो जाती हैं। इन अभिप्रेरणाओं की क्रियाशीलता में जब कभी किसी प्रकार की बाधा उपस्थित होती है, तो बालक एक तनाव में आ जाता है। यदि यह तनाव गहरा हुआ और यदि उसकी आवश्यकाताओं की पूर्ति नहीं होती, तो उसके व्यवहार अवांछित रुख लेने लगते हैं। स्पष्ट है कि व्यक्ति व्यवस्थापन इन आवश्यकताओं की समुचित पूर्ति पर निर्भर करता है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रयास में अभिभावकों को यह भी याद रखना है कि उनकी अत्यधिक पूर्ति भी व्यक्तित्व के संतुलन को उसी प्रकार बिगाड़

सकती है जैसे उनका अवदमन व्यक्तित्व के स्वास्थ्य के लिए द्योतक होता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बालक का स्वस्थ विकास उसकी आवश्यकताओं की संतुलित पूर्ति पर निर्भर करता है। यदि बालक की शारीरिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती, तो बालक के व्यक्तित्व का स्वस्थ विकास न होगा। उलझनों और परेशानियों का सामना तो सभी बालकों को कुछ-न-कुछ करना ही होता है; परंतु इनकी अवधि बहुत दीर्घ हो जाती है, तो बालक अपराधी होने की ओर झुक सकता है। जैसे भोजन के न मिलने से शरीर जर्जरित होने लगता है, उसी प्रकार बालक का मन जर्जरित होने लगता है और वह धैर्य खो बैठता है। यदि उसकी इन आवश्यकताओं की सदा समुचित पूर्ति होती रहे, तो समाज में सुखी बालकों की संख्या बढ़ जाए और दुखी तथा अपराधी बालकों की संख्या घट जाए। परंतु बालकों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती, क्योंकि उनकी पूर्ति करने में प्रौढ़ों को थोड़ा आत्मनियंत्रण करना पड़ता है। और वे इस आत्मनियंत्रण में सफल नहीं होते। इच्छाओं के दमन का कुपरिणाम विविध बालकों पर विभिन्न प्रकार से पड़ता है। कुछ बहुत ही साधारण बातों से अव्यवस्थित हो जाते हैं और कुछ पर बड़ी गहरी-गहरी बातों का भी विशेष प्रभाव पड़ता दिखाई नहीं देता। परंतु हमें यह तो मानना ही पड़ेगा कि सभी बालक उन आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहते हैं, जिनके लिए आज तक मनुष्य संघर्ष करता है। अत: जो बालकों के प्रति उत्तरदायी हैं, उनका यह कर्तव्य हो जाता है कि बालक के साथ वैसा ही व्यवहार करें जैसा वे दूसरों से अपने लिए चाहते हैं।

अपराधी बालकों के उत्पन्न करने वाले मनोवैज्ञानिक कारणों की चर्चा के बाद हम नीचे उन कारणों पर दृष्टिपात करेंगे जो घर पर बाह्य वातावरण तथा व्यक्तिगत बातों से संबंध रखते हैं।

अपराधी बालकों के होने का कोई एक ही कारण नहीं हो सकता। अत: किसी अपराधी बालक को पूर्णरूपेण समझने के लिए उसकी विशिष्ट परिस्थिति का अध्ययन करना चाहिए। प्रत्येक बालक की अपनी-अपनी परिस्थिति होती है। घर, स्कूल, साथी, पड़ोसी, कार्यकाल तथा अवकाश, समय एवं सामाजिक संघटन आदि सभी बातों का बालकों के व्यक्तित्व-विकास पर प्रभाव पड़ता है। वर्तमान परिस्थितियों के आधार पर ही किसी बालक के अपराधी होने के संबंध में निर्णय लेना ठीक नहीं होगा; क्योंकि भूतकाल में जो हो चुका है, उसका प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर स्थायी रूप से जमा रहता है। अत: याद रखना है कि जन्म से ही बालक अपराधी नहीं होता। उसके अपराधी होने का प्रधान कारण उसकी परिस्थितियाँ ही होती हैं। केवल बाह्य रूप के देखने से अपराधी बालक को पहचान लेना अत्यंत कठिन है; क्योंकि किसी सामान्य बालक और उसमें बाह्यत: कोई अंतर नहीं दिखाई पड़ता। किसी अपराधी बालक को समझने तथा उसके उद्धार के लिए हमें उसके वंशानुक्रम, सामाजिक इतिहास तथा तात्कालिक उत्पादक परिस्थिति का अध्ययन करना चाहिए। उसके अपराधी होने में ये सभी कारण अपना-अपना योग देते हैं। स्पष्ट है कि अपराधी बालक एक सामाजिक समस्या है और समाज को दृष्टि में रखते हुए उसके सुधार के उपायों को हमें खोजना है।

अपराधी बनाने वाले घरेलू कारण—प्राय: यह सोचा जाता है कि गरीबी बालक को अपराधी बना देती है। बालक के अपराधी बनने में गरीबी का प्रभाव अवश्य पड़ता है; क्योंकि गरीबी के कारण उसकी बहुत-सी इच्छाओं की पूर्ति नहीं हो पाती और अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए वह अनैतिक साधनों की ओर झुक सकता है। न्यायालय में जितने अपराधी बालक उपस्थित किए जाते हैं, उनमें अधिकांश गरीब कुटुंब के होते हैं। परंतु हमें यह भी याद रखना है कि धनी घर के अपराधी बालक न्यायालय में बहुत ही कम लाए जाते

हैं, क्योंकि उनके अभिभावक स्वयं उस संबंध में आवश्यक उपचार करने की चेष्टा करते हैं।

माता-पिता की बेकारी के कारण बच्चे प्रायः भूखे रह जाते हैं और वे अपनी साधारण शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भीख माँगने, चोरी करने अथवा कुछ ऐसे कार्यों को करने की ओर झुक सकते हैं, जिनसे उनका नैतिक अधःपतन हो जाता है। बेकारी के कारण माता-पिता में बहुधा ऐसे झगड़े हो सकते हैं जिनसे घर का सारा वातावरण दूषित हो सकता है। ऐसी स्थिति के आ जाने पर लड़के घर को छोड़कर बाहर चले जाते हैं। बाहर जाकर वे घर की आर्थिक स्थिति सुधारने का कुछ प्रयत्न करने में अनैतिक साधनों का सहारा ले सकते हैं।

यदि माँ को घर में छोटे-छोटे बच्चों को छोड़कर बाहर नौकरी अथवा मजदूरी करने जाना होता है, तो इसका प्रभाव नियंत्रणहीन बालकों पर बुरा पड़ सकता है। माँ की अनुपस्थिति में लड़के मनमानी करने लगते हैं और ऐसी आदतें सीख सकते हैं जो बाद में उन्हें अपराध की ओर अभिप्रेरित कर सकती हैं।

अपराधी बालकों के अध्ययन में देखा गया है कि पिता के कड़े नियंत्रण में रहने वाले लड़के बहुधा अपराधी की कोटि में आ जाते हैं। पिता के नियंत्रण से उनकी स्वाभाविक इच्छाओं का दमन होता है। इस दमन के कुपरिणाम की ओर पिता का ध्यान नहीं जाता। दमन का प्रभाव कभी स्वस्थकर नहीं होता। इससे व्यक्ति अपनी स्वाभाविक इच्छाओं की पूर्ति चुपके-चुपके अनैतिक साधनों के सहारे करने की ओर झुक सकता है। पिता के अधिकार का मन-ही-मन अथवा स्पष्टतः विरोध करते-करते उसमें सभी प्रकार के अधिकारियों के विरुद्ध हो जाने की प्रवृत्ति आ सकती है। इस प्रवृत्ति के कारण कोई अपराध कर बैठना उसके लिए सरल हो सकता है।

पति और पत्नी के आपसी झगड़े का बालक पर बुरा प्रभाव पड़ता है। जिन घरों में ऐसे झगड़े आएदिन हुआ करते हैं, उनके लड़के अपने को अरक्षित समझने लगते हैं। इस अरक्षित भावना को दूर करने के लिए वे चोरी करना प्रारंभ कर सकते हैं, क्योंकि चोरी से प्राप्त वस्तुओं से वे अपनी स्थिति मजबूत बनाना चाहते हैं। यदि माता-पिता के झगड़े के कारण उन्हें घर में शांति नहीं मिल सकती तो वे शांति तथा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बाहर चले जाना अच्छा समझते हैं। इस प्रकार का बाहर जाना उनके नैतिक विकास में बाधक हो सकता है। 'बाल निर्देशन केंद्रों' को यह अनुभव है कि व्यवहार-संबंधी समस्याओं वाले बालकों में घरेलू वातावरण में सुधार कर देने से स्वत: बड़े सुधार आ जाते हैं।

घर में उपमाता तथा उपपिता की उपस्थिति का बालकों के विकास पर अवांछित प्रभाव पड़ सकता है। जब उपमाता अथवा उपपिता के कारण बालक पहले जैसा प्यार नहीं पाता तो उनमें संवेगात्मक तनाव आ जाता है और वह अपराध की ओर झुक सकता है।

घर के विभिन्न बालकों में कुछ कम, कुछ अत्यधिक प्यार करने से बालकों में परस्पर ईर्ष्या और वैमनस्य आ जाती है। जब एक लड़के की दूसरे के सामने सदा प्रशंसा की जाती है तब अप्रशंसित बालक प्रशंसित बालक के ही नहीं, वरन् प्रशंसा करने वाले का भी विरोधी हो जाता है। इस विरोध में वे कुछ ऐसी चेष्टा भी कर सकते हैं जिससे उन्हें कुछ प्रशंसा मिले। इस चेष्टा में उनका व्यवहार अनैतिक हो सकता है। जिन लड़कों को घर में यथोचित प्यार नहीं मिलता उनके मन में असामाजिक भावना-ग्रंथियाँ घर करने लगती हैं। ये भावना- ग्रंथियाँ साधारण से उद्दीपन के उपस्थित होने पर अवांछित व्यवहार की ओर व्यक्ति को अभिप्रेरित कर देती हैं। जिन लड़कियों को घर में प्यार नहीं मिलता, वे काम-भावना संबंधी अनैतिक व्यवहार की शिकार हुआ करती हैं। वे प्यार एवं सम्मान

की भूखी हो जाती हैं और जो व्यक्ति उन्हें तात्कालिक प्यार और सम्मान देने को तैयार होता है, उस पर वे सब कुछ न्योछावर करने को तैयार हो जाती हैं। साथ ही यही लड़कियाँ आगे चलकर तानाशाही विचार की होती हैं। घर में पति, बच्चों, ससुर, सास, सब पर अपनी हुकूमत चलाने की प्रबल इच्छा रखती हैं।

अत्यधिक लाड़-प्यार का भी परिणाम बहुधा अवांछित ही होता है। बच्चों की प्रत्येक इच्छा को पूरा करने की चेष्टा की जाती है और जिसके प्रत्येक इशारे पर नाचने के लिए सभी हर समय तैयार रहते हैं, उनकी दशा वास्तव में आगे चलकर दयनीय हो जाती है। घर में तो उनकी किसी प्रकार निभ जाती है, परंतु उनका बाहर निकलना अत्यंत कठिन हो जाता है, क्योंकि बाहर समाज में उन्हें घर जैसा प्यार नहीं मिलता। ऐसे बच्चे किशोर अवस्था में जो भी मन में आता है उसी के अनुसार आचरण दिखलाने लगते हैं। 'बाल निर्देशिन केंद्रों' द्वारा अन्वेषण से पता चलता है कि ऐसे लड़के बहुधा चोरी के अपराधी पाए जाते हैं।

जिन घरों में शराबखोरी, अनैतिकता तथा निर्दयता का वातावरण बना रहता है, उनके लड़के बहुधा विभिन्न प्रकार के अपराध करते पाए जाते हैं। यह इतनी स्पष्ट बात है कि उसके लिए उदाहरण की आवश्यकता नहीं। कुछ ऐसे गरीब, अनैतिक और निर्दयी माता-पिता होते हैं, जो अपने बच्चों को भीख माँगने अथवा चोरी करने के लिए विवश किया करते हैं।

कुछ अन्य कारण—प्रायः प्रत्येक शहर में कुछ ऐसे क्षेत्र होते हैं, जिनमें विशेषतः ऐसे गरीब लोग रहते हैं, जिनकी रहन-सहन को नैतिक नहीं कहा जा सकता। ऐसे लोगों के घरों के लड़के प्रायः अनैतिक कामों में लग जाते हैं; क्योंकि उनका वातावरण ही बड़ा अनैतिक होता है। मनोरंजन के लिए बुरे स्थान, जुआ खेलने का स्थान तथा वेश्यालय आदि उनके अनुभव के अंग होने लगते हैं;

क्योंकि वातावरण में उपस्थित इन स्थानों का प्रभाव उनके चरित्र पर पड़े बिना नहीं रहता।

अपराधी बालकों के अध्ययन से पता चलता है कि एक बालक दूसरों को किसी अनैतिक कार्य में लगाने के लिए उत्साहित करता है और अन्य अपराधी बालक अपना एक समूह बनाकर अनैतिक व्यवहार के भागी होते हैं। यह अनैतिक व्यवहार ऐसा होता है जिसे कदाचित कोई बालक अकेले करने का साहस न करता। ऐसे अनैतिक व्यवहार में रेलगाड़ी पर पत्थर फेंकना, बिना टिकट रेलयात्रा करना, वर्जित जलाशयों में तैरना, वर्जित स्थानों में ऊधम तथा कहीं आग लगा देना आदि हो सकते हैं।

इस सामूहिक अनैतिक व्यवहार से यह जान पड़ता है कि यदि इन बालकों को अपने अवकाश काल को बिताने का समुचित और स्वास्थकर साधन दिया जाता तो कदाचित वे ऐसे कार्यों में न लगते। अतः समाज का यह कर्तव्य है कि वह बालक के अवकाश काल के उपयोग के लिए उचित साधनों का आयोजन करे।

फैक्ट्री में काम करने वाले बालकों की भी दशा दयनीय होती है। फैक्ट्री में उन्हें मशीन की तरह काम करना होता है। उनकी सभी कोमल भावनाओं पर तुषारापात हो जाता है। फलतः वे फैक्ट्री में कार्य करने के बाद अनैतिक रूप में अपने अवकाश काल को बिताने की ओर झुकते हैं। अपने मनोरंजन के लिए वे अवांछित स्थानों, सिनेमाघर, ताड़ीखाना, वेश्यालय, जुआघर को जाते हैं। इन स्थानों का उनकी नैतिकता पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

धुआँधार जहरीले प्रचार—बालकों को अनैतिकता की ओर प्रेरित करने में आज के जहरीले, गंदे प्रचार साधनों का बहुत बड़ा हाथ है। कोई भी शहर ऐसा नहीं है, जहाँ पर सैकड़ों प्रकार की बीड़ी फेक्टरियाँ, तंबाकू कारखानों के प्रचार-वाहन अश्लील गीत गाते हुए अपने माल का प्रचार करते हुए न मिलें। जनसाधारण का मन अपनी

ओर लुभाने के लिए ये सब कुछ नैतिक-अनैतिक करने में तनिक भी संकोच नहीं करते। प्राय: यह देखा जाता है कि अपने साथ नाचने वाले लड़के रखते हैं, वे विचित्र ढंग से अपने को सजाए रहते हैं। विचित्र प्रकार के हाव-भाव दिखाकर आँखें मटकाकर, गंदे और अश्लील, कामुकता उत्पादक गीत गा-गाकर प्रचार करते हैं। इन्हें देखते ही मुहल्ले के बच्चे उस जगह एकत्रित हो जाते हैं। बच्चों का कोमल हृदय उनकी अश्लीलता को शीघ्र ग्रहण करता है। कुछ रंगे-रंगाये पोस्टर भी पाए जाते हैं। थोड़ी देर प्रचार करके मोटर आगे बढ़ जाती है, मगर उनकी छाप इन बच्चों पर पड़ती है। वे इसी ढंग से उन्हीं गीतों को दुहराते हैं। परिणाम यह होता है कि उनके विचार तो दूषित हो ही जाते हैं साथ ही वे बचपन से नशीली वस्तुओं का सेवन प्रारंभ कर देते हैं। समाज की नैतिकता पर इन अनियंत्रित प्रचार साधनों ने बड़ा घातक प्रभाव डाला है। यदि समय रहते इन्हें रोका न गया तो अच्छाई की ओर ले जाने वाले सारे साधन इनके सामने निष्फल हो जाएँगे। इस ओर सबसे अधिक ध्यान देने का कार्य सरकार का है। जिस तरह अफीम के खुले व्यापार ने सारे चीन देश के निवासियों को अफीमची और काहिल बना दिया था, उसी प्रकार का खुला प्रचार भारतवासियों को बीड़ी, सिगरेट, तंबाकू का अभ्यासी बना देगा। आज नगर तो नगर ही है, गाँव के ८० प्रतिशत बच्चे दस वर्ष से पहले ही नशीली वस्तुओं का सेवन प्रारंभ कर देते हैं। बड़े-बड़े शिक्षाप्रद उपदेश क्यों न निष्फल जाएँ, जब बचपन से ही वे सीखते हैं 'प्यार किया तो डरना क्या', 'इस दिल के टुकड़े हजार हुए'। घर से जाते समय एक बच्ची अपनी मानसिकता की एक परचा रखती गई। बाद में घरवालों ने खोज किया तो उस परचे में लिखा था 'अब प्यार किया तो डरना क्या'।

इस प्रचार साधन में सिनेमा का हाथ सबसे अधिक है। एक नगर में जितने सिनेमा होते हैं सबके नए चलचित्रों का रोज सज-धजकर जुलूस निकलता है। आप देखेंगे इस जुलूस के साथ

सबसे अधिक संख्या बच्चों की होती है। सिनेमा का प्रचारक आगे-आगे लाउडस्पीकर से खेल की प्रशंसा करता जाता है, परचे बाँटता है और बच्चे पीछे-पीछे दौड़ते जाते हैं। इनके जुलूसों को ये ही बच्चे सफल बनाते हैं। इनके कोमल हृदय सूक्ष्म रूप से बुराई ग्रहण करते रहते हैं और अनैतिकता की ओर तेजी से कदम बढ़ाते जाते हैं।

व्यक्तिगत कारण—किसी शारीरिक दोष के कारण बालक का कोई अनैतिक व्यवहार दिखलाना अवश्यंभावी नहीं। परंतु शारीरिक दोष के कारण जो वह दूसरों का व्यंग्य सुना करते हैं, उससे असामाजिक व्यवहार दिखलाने की प्रवृत्ति आ सकती है। उदाहरणार्थ जो बालक सदैव बीमार रहा करता है, उसमें एक प्रकार की आत्महीनता की भावना आ सकती है और वह उन बालकों के प्रति विरोध-भावना ला सकता है, जो प्राय: स्वस्थकर होते हैं। ऐसे बालक अन्य बालकों के समूह आरंभ कर सकते हैं। अत: उन्हें अपने व्यंग्य व्यवस्थापन में बड़ी कठिनाई का सामना करना होता है। दोनों को अपनी उम्र वाले बालकों से निभाना कठिन हो जाता है। मंदगति से विकसित होने वाला बालक अपने को छोटा और तीव्रगति वाला अपने को बड़ा पाता है। ऐसी स्थिति में दोनों में एक प्रकार का ऐसा मानसिक असंतोष उत्पन्न होता है, जिससे अनैतिक व्यवहार की ओर झुकना कठिन नहीं होता। तीव्रगति से विकसित होने वाला बालक अपने से छोटे बालकों को विविध प्रकार से तंग कर सकता है, और मंदगति वाला अपनी आत्महीन भावना के प्रतिक्रियास्वरूप अनैतिक व्यवहार दिखला सकता है। बहुत-से अन्वेषकों का कहना है कि दोषयुक्त व्यवहार और मानसिक विकास की मंदता में घनिष्ठ संबंध है। इस घनिष्ठ संबंध की यहाँ व्याख्या करना हमारे क्षेत्र से बाहर की बात है। परंतु इस संबंध में इतना कह देना आवश्यक है कि मंद बालक में अनैतिक प्रलोभनों से अपने को बचाने की सामान्य बालकों

की अपेक्षा कम सामर्थ्य होती है। अत: समाज का यह कर्तव्य है कि ऐसे बालकों की रक्षा के लिए आवश्यक उपायों का आयोजन करें।

अपराधी बालकों के उपचार के संबंध में बेकर फाउंडेशन, बोस्टन यू० एस० ए० ने कुछ सुझावों का प्रतिपादन किया है। इन सुझावों का नीचे संक्षेप में वर्णन किया जा रहा है—

(१) बालक की रुचियों के साथ माता-पिता की सहानुभूति का भी अध्ययन करना चाहिए।

(२) माता-पिता को अपने व्यवहार में अपराधी बालकों के प्रति कड़ा नहीं होना चाहिए।

(३) बालक की शारीरिक और मानसिक लीलाओं को समझना चाहिए।

(४) निर्दयतापूर्ण व्यवहार को बंद करना चाहिए।

(५) कोसना, तरह-तरह की बातें कहना, धिक्कारना बंद करना चाहिए।

(६) ऐसे बच्चों को हर अवसर पर कुछ रियायतें देना चाहिए।

(७) माता-पिता को अपने उत्तरदायित्व को निभाना चाहिए।

(८) बालक के अपराध को मामूली न समझना चाहिए।

(९) कौटुंबिक गलतफहमी को दूर करना चाहिए।

(१०) काम संबंधी भावनाओं के प्रति माता-पिता को मनोवैज्ञानिक और स्वस्थ विचार रखना चाहिए तथा इस संबंध में बालक और बालिकाओं की जिज्ञासा को शांत करना चाहिए।

(११) उचित घरेलू वातावरण उत्पन्न करना चाहिए।

(१२) कुटुंब के अन्य सदस्यों के अनैतिक व्यवहार को बंद करना चाहिए।

(१३) कुटुंब के उन संबंधियों को निकाल देना चाहिए, जिनका बालकों पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

बालकों की अपराध प्रवृत्ति को रोकने के लिए किसी एक ऐसे उपाय की चर्चा नहीं की जा सकती, जो हर स्थिति में लागू हो, क्योंकि उनकी अपराध प्रवृत्ति के कई कारण होते हैं। इस संबंध में रुचि रखने वालों को सभी उपलब्ध साहित्य से परिचित होना चाहिए, जिससे इस संबंध वाली आधुनिक विचारधारा से वे अवगत हो सकें।

अपराध प्रवृत्ति को रोकने का कार्य बालक के जन्म के पूर्व ही प्रारंभ कर देना चाहिए। शिशु के गर्भ में आ जाने के बाद माता के स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देना चाहिए। जन्म के बाद लालन-पालन इस प्रकार का हो कि शिशु अच्छी ही आदतों को अपनाए। इस संबंध में नर्सरी स्कूलों की उपयोगिता से इनकार नहीं किया जा सकता।

स्वास्थ्य और सफाई

आम माताओं को यह कहते सुना जाता है कि 'हम तो बच्चों की बीमारी से तंग आ गए। उसके खाने-पीने और पालन-पोषण पर इतना खर्च किया जाता है कि उस पर भी आएदिन घर में कुछ-न-कुछ आफत बनी रहती है। किसी बच्चे के जुकाम है, तो किसी को बुखार, एक ने अपनी हड्डी तोड़ ली तो दूसरे ने चाकू से हाथ काट लिया। किसी बच्चे को दस्त आते हैं तो किसी को सर में भारी दर्द है। बच्चों के टांसिलों का खराब होना तो मानों एक फैशन ही चल पड़ा है। बच्चों की दुःख-तकलीफें इतनी अधिक होती हैं कि माँ-बाप को घड़ी भर आराम नहीं। कई बच्चों के माँ-बाप तो मानो सर पर दुःख की गठरी लिए ही घूम रहे हैं, उनकी आर्थिक दशा कितनी भी अच्छी क्यों न हो, उन्हें चैन नहीं मिलता। कमाई का बड़ा भाग डॉक्टर साहब की नजर भेंट हो जाता है।

दुर्बल स्वास्थ्य का कारण—बच्चों की जितनी परेशानियाँ हैं उनका कोई कारण अवश्य है। उचित रूप से इन्हें दूर करने के लिए

इनकी जड़ तक पहुँचना चाहिए। नीचे लिखे कारण इन बीमारियों के सहायक होते हैं।

(१) अगर बच्चे के माता-पिता का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है, तो उसका फल बच्चों को भी भोगना पड़ेगा। अपना जीवनसाथी चुनने से पहले प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह इस बात को भी परखे कि अमुक व्यक्ति मेरे भावी बच्चे का बाप या माँ बनने योग्य है कि नहीं ? इससे उत्पन्न हुए बच्चे मानसिक और शारीरिक रूप से स्वस्थ होंगे कि नहीं ? इसके खानदान में कोई ऐसी बीमारी तो नहीं है, जिसका असर आगे चलकर बच्चे में भी आने की संभावना हो ? याद रखें कि सृजन का कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण है। पारिवारिक जीवन की सफलता इसी पर स्थिर है। अगर किसी व्यक्ति के बच्चे रोगी हैं, तो उसके परिवार की सुख-शांति बनी नहीं रह सकती। दंपत्तियों की सारी शक्ति-संपत्ति बच्चों की बीमारी ही शोषण कर लेती है। प्रथम तो उचित यही है कि दुर्बल स्वास्थ्य वाले व्यक्तियों को विवाह नहीं करना चाहिए, अगर वे विवाह करते भी हैं तो संतान पैदा करने की भूल कभी न करें। हमारे देश में जनसंख्या की समस्या वैसे ही एक भयंकर रूप धारण कर रही है। मनुष्य की नस्ल कुत्ते-बिल्ली से भी गई बीती बनती जा रही है। तीर्थ-स्थानों और मेले-ठेले में पड़े कोढ़ियों को भी देखिए कि संतान उत्पन्न करने के कार्य को कितनी तत्परता से कर रहे हैं। बताइए बच्चे क्या बनेंगे ? भारतवर्ष में इतनी बड़ी जनसंख्या के लिए भोजन जुटाना ही एक बड़ा भारी कार्य हो गया है। इसलिए यदि नस्ल का सुधार करना है तो केवल स्वस्थ दंपत्ति ही संतान पैदा करें—इस बात को समझने और व्यवहार में लाने की बड़ी आवश्यकता है। पुरानी मान्यताएँ अब बदलनी चाहिए कि संतान के बिना पिंडदान कौन देगा ?

(२) बच्चा जब गर्भ में हो उस समय माता का स्वास्थ्य दुर्बल हो जाने से दिनचर्या तथा भोजन के असंतोषजनक होने अथवा माँ के आकस्मिक बीमार होने से भी बच्चे का स्वास्थ्य चोट खा जाता है।

इसके अतिरिक्त प्रसव-क्रिया के अस्वाभाविक और कष्टकर होने तथा औजार की चोट लगने या आपरेशन के समय बच्चे के अंगों या सिर में चोट लगने से भी बच्चे के शारीरिक या मानसिक विकास में बाधा पड़ती है। अतएव गर्भवती के स्वास्थ्य की रक्षा बच्चे के स्वास्थ्य की ही निगरानी समझनी चाहिए।

(३) **जन्म के पश्चात् माँ के दूध का अभाव**—आजकल पढ़ी-लिखी फैशनपरस्त माताएँ अपने बच्चे को दूध पिलाने में कतराती हैं। इससे उनका शारीरिक सौंदर्य बिगड़ जाएगा या उनके सोसाइटी जीवन में बाधा पड़ेगी। ऐसी स्त्रियों ने मातृत्व की महानता को नहीं समझा है। बड़े दुःख की बात है कि पढ़ी-लिखी सुसंपन्न घराने की स्त्रियाँ ही इस प्रकार के विचार रखती हैं। उन्हें अपने स्वास्थ्य-रक्षा तथा बच्चे के पालन-पोषण की सभी सुविधाएँ हैं। अगर वे मातृ विज्ञान के अनुसार अपने बच्चों को पालें, उन्हें अपना दूध पिलाएँ, तो वे सब तरह से आदर्श बच्चे बन सकते हैं। माँ के दूध पर बच्चे का जन्मसिद्ध अधिकार है। वही उसका प्राकृतिक भोजन है। माँ के दूध से जो जीवनशक्ति बच्चे को प्राप्त होती है, वह पशु या डिब्बों के दूध से प्राप्त नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त उस दूध से बच्चों के शरीर में एक 'अम्युनिटी'—रोगों को परास्त करने की शक्ति पैदा हो जाती है। अस्पतालों के आँकड़ों से पता चलता है कि जो बच्चे माँ के दूध पर पले होते हैं उनकी सहन-शक्ति ऊपर के दूध पर पले बच्चों की अपेक्षा बहुत अधिक होती है। वे दाँत आसानी से निकाल लेते हैं, उन्हें डायरिया, जुकाम, खाँसी आदि रोग प्रायः नहीं सताते। मौसमी बीमारियों का अगर आक्रमण हो भी जाए, तो वे उसे आसानी से सँभाल लेते हैं। जबकि ऊपर के दूध पर पले बच्चों का हाजमा प्रायः खराब रहता है, वे जुकाम, खाँसी तथा छूत की बीमारियों के जल्द शिकार हो जाते हैं। उनके चेहरे पर वह लाली तथा अंगों में वह पुष्टता नहीं होती जो कि माँ के दूध पर पले

किसी बच्चे में पाई जाती है। वे दाँत भी कष्ट से निकालते हैं। माता के अनेक गुणों को वे पूरी तरह ग्रहण नहीं कर पाते।

अतएव अपने बच्चे में बीमारी से लड़ने की स्वाभाविक शक्ति 'अम्युनिटी' पैदा करने के लिए यह जरूरी है कि माँ उसे अपना दूध पिलाए। बच्चे को दूध पिलाने से माँ का शारीरिक सौंदर्य निखर आता है। वक्षस्थल उभरता है व कमर तथा पेट पतले होते हैं। इसके अतिरिक्त ऊपर का दूध पिलाने में खर्चा भी अधिक होता है, बोतल और बरतन की सफाई का भी खटराग रहता है। अगर वही पैसा माँ के भोजन पर खर्चा जाए तो माँ और बच्चे दोनों को लाभ हो।

(४) यदि जन्म के पश्चात बच्चे की देखभाल का कार्य ऐसे व्यक्ति ने किया हो जो शिशु विज्ञान से अपरिचित है, तो भी बच्चे का स्वास्थ्य संतोषजनक नहीं रहता। माताएँ अपनी मूर्खता से स्वस्थ बच्चे को भी रोगी बना देती हैं। देखने में आया है कि पालन-पोषण संबंधी भूल करने से स्वस्थ बच्चा भी शारीरिक और मानसिक रूप से रोगी बन जाता है। हमारे देश में अधिकांश बच्चे माता की भूल के कारण शारीरिक और मानसिक रूप से समस्यापूर्ण बन जाते हैं। उनकी दिनचर्चा, खानपान तथा अन्य क्रियाएँ ठीक ढंग से, ठीक समय पर नियमपूर्वक न होने के कारण वे अस्वस्थ ही रहते हैं।

धनाभाव के कारण बच्चों की इतनी दुर्दशा नहीं होती, जितनी कि माता कि अज्ञानता या उपेक्षा से होती है। वे अपने बच्चों की जरूरतों को नहीं समझतीं और न ही उन नियमों का पालन ही करती हैं जो कि बच्चों के स्वास्थ्य विकास के लिए आवश्यक हैं। दूध के अतिरिक्त बच्चों के लिए कुछ और भी चाहिए। वह है—

(१) अपनी आयु के अनुकूल भोजन

(२) नियमित दिनचर्या

(३) सूरज, हवा और पानी

(४) आराम और नींद

(५) सफाई

(६) मनोरंजन और व्यायाम

(७) अनुकूल वातावरण।

भोजन और नियमित दिनचर्या के विषय में पिछले अध्यायों में विस्तार से विचार हो चुका है।

सूरज और हवा—सूरज अथवा धूप न मिलने से जिस प्रकार पौधे पीले-पीले पड़ जाते हैं, उसी प्रकार बच्चे भी पीले और निस्तेज पड़ जाते हैं। सूर्य की किरणें हमारे शरीर में प्राणदायिनी शक्ति और गर्मी पैदा करती हैं। जो बच्चे तंग घरों में, जहाँ शुद्ध हवा और सूरज की किरणें नहीं पहुँच पातीं, रहते हैं वे कई बीमारियों का शिकार हो जाते हैं। उनके फेफड़े कमजोर रहते हैं, आँखें कमजोर हो जाती हैं। हड्डियाँ नर्म होकर मुड़ जाती हैं। जो बच्चे तंग गलियों में रहते हैं, जिनके शरीर पर कभी धूप नहीं पड़ती, उन्हें प्राय: रिकेट्स (हड्डियों का रोग) हो जाता है। विज्ञान के इस युग में सूरज की रोशनी का महत्त्व लोग दिन-पर-दिन अधिक-से-अधिक महसूस कर रहे हैं। गाँवों में यह रिवाज अब भी है कि छोटे बच्चों को तेल की लोई मलकर माँ उसे धूप में सुला देती है। इससे बच्चा चाहे थोड़ा साँवला पड़ जाता है, परंतु स्वास्थ्य के लिए सूर्य-सेवन बहुत लाभप्रद है। बच्चों को जाड़ों में दोपहर का तथा अन्य ऋतुओं में सुबह के समय धूप का सेवन कराना चाहिए। कुत्ता खाँसी, सर्दी, जुकाम, आँखों की कमजोरी आदि में तो प्रात:काल के समय धूप का सेवन विशेष लाभप्रद बताया गया है।

साफ हवा भी बच्चों के लिए उतनी जरूरी है जितनी कि धूप। ठंड से बचने के लिए बहुत-से लोग रजाई से मुँह ढककर सोते हैं। बरसात में मच्छरों से बचने के लिए भी वे चादर से मुँह लपेट लेते हैं। दूषित हवा में साँस लेने से सोकर उठने पर वे ताजगी का अनुभव नहीं करते। जो बच्चे गंदी गलियों में तथा तंग घरों मे रहते

हैं, वे साफ हवा के अभाव में अनेक बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। साफ हवा में ऑक्सीजन अधिक मात्रा में होती है, ऑक्सीजन से ही हम जीवित रहते हैं। जिन लोगों का घर गलियों में है, उन्हें चाहिए कि अपने बच्चों को खुले मैदान में खेलने भेजें। जाड़ों में दोपहर का समय खुली छत पर बिताएँ तथा अवकाश निकालकर माताएँ दोपहर को पास के पार्क, गार्डन या किसी के खेत में बच्चों को लेकर घूमने-फिरने चली जाएँ। शहरों में रहने वाले व्यक्ति अगर अपनी छुट्टियाँ गाँवों में बिताएँ, तो उनके बच्चों का स्वास्थ्य निखर आएगा। गाँवों में खाने-पीने की सुविधा होती है, साथ ही अमूल्य धूप और हवा सहज ही प्राप्त हो सकती है।

सफाई—वैसे तो कहने को हमारे घरों में छूआछूत इतनी है, पर सफाई की दृष्टि से हम लोगों का रहन-सहन बहुत ही गिरा हुआ है। यह बात नहीं कि केवल गरीबी के कारण लोग गंदे रहते हैं, परंतु हमारा स्वभाव कुछ इसी प्रकार का बन गया है कि व्यक्ति सफाई और पवित्रता का सही अर्थ नहीं समझते।

हमारे अधिकांश अशिक्षित घरों का रहन-सहन गंदा है। कुछ लोग तो अज्ञानता तथा आलस्यवश गंदे रहते हैं और कुछ आधुनिक ढंग की सफाई को फैशनपरस्ती में गिनते हैं और अपने को लकीर का फकीर बनाए रखने में गौरव अनुभव करते हैं। घर के रहन-सहन का प्रभाव बच्चों पर भी पड़ता है। साफ-सुथरे घर के बच्चे सँवारी हुई क्यारी के सदृश आकर्षक तथा स्वस्थ होते हैं, जबकि गंदे घर के बच्चे अँधेरी और सूखी सड़ी जगह में उगे हुए पौधों के सदृश पीले और मुरझाए हुए प्रतीत होते हैं।

अब सभ्यता का यह तकाजा है कि हम सफाई और पवित्रता का महत्त्व सही अर्थ में समझें। धार्मिक ढकोसलों और छुआछूत को सफाई समझना गलत है। हमारे देश के समाज और गली-मुहल्ले तभी साफ रह सकते हैं, जबकि हम अपने बच्चों को सफाई से पालें,

उनमें सफाई की आदत डालें, ताकि वे गंदगी से घृणा करें। अपने शरीर, वस्त्र, निवास-स्थान तथा आस-पास की सफाई को महत्त्व दें। उनकी आदतें साफ हों, विचार पवित्र हों और उनके कार्य उजले हों। गंदगी सब बीमारियों की जड़ है। आदतें ही बच्चों का स्वभाव बनाती हैं। जो बच्चा नियम से नित्य शौच जाता है, रोज नहाता है, जिसके ओढ़ने-बिछाने तथा पहनने के कपड़े साफ-साफ बर्तनों में सफाई से बना हुआ खाना खाता है, सफाई से अपना काम करता है और गंदगी से दूर रहता है, उससे बीमारी अपने आप ही दूर रहेगी।

बच्चों को निम्नलिखित सफाई की आदत बचपन से ही डालनी चाहिए—

(१) शरीर व वस्त्रों की सफाई का ध्यान रखना।

(२) खाने से पहले और बाद में हाथ-मुँह साफ करना।

(३) पेट, दाँतों, बालों तथा हाथों को साफ रखना।

(४) निश्चित स्थान पर मल-मूत्र त्यागना।

(५) आस-पास की जगह को गंदा न करना।

(६) बाजार की बनी हुई कोई चीज न खाना।

(७) मुँह, नाक, कान में उँगली नहीं डालना।

(८) नाक, मुँह पोंछने के लिए रूमाल का इस्तेमाल करना तथा गंदी जगह पर न बैठना।

व्यायाम व मनोरंजन—बच्चों के लिए कोई खास तरह के व्यायाम की जरूरत नहीं है। खेल-कूद में ही उनकी काफी कसरत हो जाती है। आवश्यकता इस बात की है कि ऐसी खुली जगह में जहाँ साफ हवा और धूप आती है, बच्चों को खेलने-कूदने की सुविधा हो। स्कूल में भी बच्चों के लिए मनोरंजक खेल ड्रिल तथा ऋतु अनुसार 'इनडोर' या आउटडोर' खेलों आदि की व्यवस्था की जाए। हमारे देशी खेल तथा कबड्डी, आँखमिचौनी, कुत्ता-बिल्ली-खो-खो तथा अन्य खेल भी व्यायाम की दृष्टि से उपयोगी तथा मनोरंजक हैं।

जिन बच्चों के जीवन में खेल-कूद तथा मनोरंजन का अभाव होता है, वे सुस्त पड़ जाते हैं, उनका मानसिक स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता। बाद में इसका प्रभाव उनके शारीरिक स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। छोटा बच्चा पालने में पड़ा हुआ अपने में मस्त, गर्र-गर्र शब्द करता हुआ हाथ-पाँव मारता है, नहाते समय पानी में छपक-छपक करके प्रसन्न होता है। यही उसका व्यायाम है। जब वह कुछ और बड़ा हो जाता है, तो पलंग पर लोट-पोटकर खेलता है, किसी वस्तु को पकड़कर खड़ा हो जाता है। कुछ दिन बाद जब उसे चलना आ जाता है तो घुटने-घुटने खिसककर और ठुमक-ठुमक चलकर अपना व्यायाम कर लेता है। चाल में दृढ़ता आ आने पर दौड़ना, चढ़ना, उतरना आदि क्रियाओं को करता हुआ, वह काफी कसरत कर लेता है। बच्चे को नहलाने से पहले उसे तेल मलने से भी उसकी त्वचा और अंग पुष्ट होते हैं। बच्चे की खेल के प्रति रुचि और स्वाभाविक प्रफुल्लता उसे क्रियाशील बनने की प्रेरणा देती है। अतएव व्यायाम तथा खेल-कूद की रुचि का बच्चे में विकास अत्यधिक आवश्यक है उसके लिए अभिभावकों को पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिए।

एक सुप्रसिद्ध विचारक का कथन है कि—"शिशु राष्ट्र का पिता है, वह राष्ट्र का गौरव है, अगले दिनों राष्ट्र-समाज का उज्ज्वल भविष्य उन्हीं के कंधों पर होगा, अतएव उनके निर्माण के लिए हर संभव सावधानी निहायत आवश्यक है।"



मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा